Regd. No. 58414/94

स्वामी रामानन्द जी द्वारा संचालित

हमारी साधना

त्रैमासिक

वर्ष 28 • अंक 1 • जनवरी-मार्च 2021

मूल्य रु. 25/-

बार-बार तमस घेरने की कोशिश करता है। व्यक्ति को अपनी लगन को बार-बार बढ़ाकर भगवान की नित्य नूतन समीपता को प्रतीत करने का यत्न कर उसे भगा देना चाहिये। हमें पूर्णरूपेण भगवान का होने का यत्न करना चाहिये। अपनी इच्छाओं को, रुचियों को और सभी चेष्टाओं को भगवान के अर्पण करने की कोशिश करनी चाहिये।

(पत्र पीयूष पत्र संख्या 128)

करुणामयी सुमित्रा माँ

हमारी साधना

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।
न त्वहं कामये राज्यम्, न स्वर्गम् न पुनर्भवम्।
कामये दुःख तप्तानाम्, प्राणिनामार्ति नाशनम्।।

वर्ष : 28 जनवरी-मार्च 2021 अंक : 1

भजन

चरन रेनु सिर धरहुं तिहारी।
दीनबन्धु दुखहरन दयानिधि हेतु रहित हितकारी।
गुननिधान करुना की आकर असरन सरन खरारी।।
सील सिन्धु सेवक सुखदायक सरनागत भयहारी।
अति अनाथ के नाथ सुहृद अति निरबल के बल भारी।।
पतित उधारन विपति बिदारन जनरंजन सुभकारी।
आरति हरन दयालु सदा के अघखंडन असुरारी।।
प्रतिपालक तिलोक के स्वामी परम पिता महतारी।
रामसरन कहँलगि गुन गावै अति मतिमंद अनारी।।

भजन संख्या 16 - स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'

प्रकाशक
साधना परिवार
स्वामी रामानन्द साधना धाम,
संन्यास रोड, कनखल,
हरिद्वार-249408
फोनः 01334-240058
मोबाइलः 08273494285

सम्पादिका
श्रीमती रमन सेखड़ी
995, शिवाजी स्ट्रीट,
आर्य समाज रोड
करोल बाग,
नई दिल्ली-110005
मोबाइलः 09711499298

उप-सम्पादक
श्री रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'
1018, महागुन
मैंशन-1, इन्दिरापुरम,
गाजियाबाद-201014
ई-मेलः rcgupta1018@gmail.com
मोबाइलः 09818385001

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	रचयिता	पृ.सं.
1.	चित्र - करुणामयी सुमित्रा माँ		2
2.	भजन	स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'	3
3.	सम्पादकीय		5-6
4.	सघन तिमिर से लिये चलो		6
5.	वन्दना तुझे स्वामी	श्री नानक चन्द सुन्दरानी	7
6.	चरणों में	श्री नरेन	7
7.	विनय	प्रोफेसर ब्रजलाल अग्रवाल	7
8.	विरह-वेदना	श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल	7
9.	दिगोली शिविर के भावोद्गार	श्री चिरंजी सिंह	8
10.	आँसू	श्रीमती सन्तोष नांगिया	8
11.	गीता विमर्श - श्रीमद्भगवद्गीता चतुर्थोऽध्याय (गतांक से आगे) -	स्वामी रामानन्द जी	9-11
12.	Letters to Seekers – Letter No. 5 and 6	Swami Ramanand Ji	12-16
13.	पत्र पीयूष	स्वामी रामानन्द जी	17-18
14.	इन्सानियत	श्रीमती कृष्णा सूरी	19-20
15.	विनय	श्री चिरंजी सिंह	20
16.	हे मन! हो मातृ शरणे	संकलित	21-24
17.	ईश्वर, आत्मा और प्रकृति	उर्मिला सहगल	25-26
18.	श्री गुरुदेव सत्संग-सुधा	श्रीमती सन्तोष नांगिया	27-30
19.	दानदाताओं की सूची		30, 37
20.	स्वयं नाम की आराधना भी क्रान्तिकारी कदम है	सुश्री मीरा गुप्ता	31
21.	In Search of God	Sh. Dinesh Bahl	32-36
22.	शुभ समाचार		38
23.	शोक समाचार		38
24.	जन्मदिवस शिविर-2020 की कार्यवाही		39
25.	स्वामी रामानन्द जी साधना साहित्य		40
26.	बाल-साधना-शिविर-2021 - सूचना		41
27.	श्री गुरुदेव निर्वाण-दिवस साधना शिविर-2021 - सूचना		42
28.	चित्र - स्वामी रामानन्द जी जन्मोत्सव-2020		43-44

Printed and Published by Shri Dinesh Bahl for and on behalf of Swami Ramanand Sadhna Pariwar, Sadhna Dham, Sanyasa Road, KANKHAL-Haridwar (Uttarakhand) and printed at Rakmo Press Pvt. Ltd., C-59, Okhla Industrial Area Phase-I, New Delhi-110020.

सम्पादकीय

सभी पाठकों साधकों को नव वर्ष की शुभकामनायें। आशा है यह नव वर्ष देश और दुनिया के लिये खुशियों से भरा होगा विशेषकर इसलिये क्यों कि गत वर्ष की यातनाओं से जो हमने सीखा है उसका सदुपयोग कर पायेंगे, जैसे गहन रात्रि के बाद सवेरा विशेष प्रकाशमान व प्रिय होता है। वर्ष 2020 ने हमको बहुत कुछ सिखाया है। साधना परिवार के सभी कार्यक्रम घर बैठे आयोजित करना एक नया अनुभव था। सत्संग के लिये या शिविर के लिये हरिद्वार आदि जाना पड़ता था किन्तु इस वर्ष में तो साधना धाम ही साधकों के घर आ गया जिसका लाभ पूरे परिवार ने उठाया। गुरुदेव की असीम कृपा का अनुभव किया।

पिछली तिमाही में दो अद्वितीय कार्य WhatsApp के माध्यम से श्रद्धालु साधकों द्वारा सम्पन्न किये गये। पहला - Zoom पर प्रवचन - प्रत्येक मंगलवार तथा दूसरे व चौथे रविवार, जिसमें भारत के विभिन्न शहरों के अतिरिक्त अमेरिका के साधक भी उपस्थित रहते हैं; और दूसरा विविधा कार्यक्रम का शुभारम्भ, जिसमें प्रत्येक शनिवार को उन अति वरिष्ठ व विशिष्ट साधकों का परिचय व साधना परिवार में योगदान का वर्णन जो अपने समय में गुरु महाराज के सान्निध्य में रहे और आज हमारे बीच में नहीं हैं। ऐसे अति वरिष्ठ व विशिष्ट साधकों की जानकारी जिन साधकों को है उनकी रिकार्डिंग श्री पुरन्दर तिवारी जी द्वारा संकलित करके शनिवार को WhatsApp ग्रुप में पोस्ट कर दी जाती है। इसमें अब तक माँ सुमित्रा सभरवाल, श्री सूर्यप्रसाद जी शुक्ल, साहू काशीनाथ जी, श्री शिवकुमार जी पाठक के प्रति साधकों ने अपनी भावपूर्ण अभिव्यक्ति प्रस्तुत की हैं।

इसके अतिरिक्त साधना परिवार की वेबसाइट भी बना ली गई है जिसका नाम है www.sadhnaparivar.in - इस वेबसाइट पर गुरुदेव का साहित्य, पिछले वर्ष की पत्रिकायें और जन्म-शताब्दी समारोह पर प्रकाशित स्मारिका upload कर दी गई हैं। अन्य सामग्री भी समय-समय पर upload होती रहेगी।

प्रस्तुत पत्रिका में पूर्व की पत्रिकाओं में छप चुके अत्यन्त उपयोगी लेख पुनःप्रकाशित किये जा रहे हैं। गुरु महाराज के हिन्दी व अंग्रेजी में साधकों को लिखे गये कुछ पत्र भी दिये जा रहे हैं।

हमारी साधना का इस वर्ष का यह प्रथम अंक भी हम कोरोना महामारी के चलते डिजिटल रूप में ही प्रस्तुत करने के लिये बाध्य हैं। स्थिति सुधरने पर हमारी साधना का मुद्रित संस्करण निकालने का हरसम्भव प्रयास किया जायेगा।

साधकगण अपने लेख, कवितायें व सुझाव मुख्य-सम्पादक अथवा उप-सम्पादक को पत्रिका में दिये गये पते पर डाक अथवा ई-मेल द्वारा प्रेषित कर सकते हैं।

सघन तिमिर से लिये चलो

लिये चलो ज्योतिर्मय, मुझ को सघन तिमिर से लिये चलो।
रात अंधेरी, गेह दूर है, मुझे सहारा दिये चलो॥
थामो ये मेरे डगमग पग
दूर दृश्य चाहे न लखें दृग -
मुझे अलं है देव, एक डग
कभी न मैंने निस्सहाय हो मांगा - मुझको लिये चलो।
निज पथ आप खोजता-लखता! पर तुम अब तो लिये चलो।
लिये चलो ज्योतिर्मय, मुझ को सघन तिमिर से लिये चलो॥
प्यारा था मुझ को जगमग दिन
हेय मुझे थे यह भय अनगिन
अहंकार से गया सभी छिन
मेरे पिछले जीवन को प्रिय, मन में रख कर अब न छलो।
लिये चलो ज्योतिर्मय मुझको सघन तिमिर से लिये चलो॥
जब तक है तेरा बल सिर पर
हूँगा मैं गतिशील निरन्तर
बीहड़-दलदल, शैल-प्रलय पर
तब तक, जब रात अँधेरी रम्य उषा आ बदलो,
चिरप्रिय खोये देवदूत वे, मुसकाते फिर मुझे मिलो।
लिये चलो ज्योतिर्मय मुझको सघन तिमिर से लिये चलो॥

वन्दना तुझे स्वामी

जन्म दिन आज मना रहे हैं, हम सब तेरा स्वामी।
श्रद्धा से आज कर रहे हैं, हम वन्दना तुझे स्वामी॥
हर दिल में है चाहना, और आदर उत्साह भारी।
हर साधक तड़प रहा है, पाने को झाँकी तुम्हारी॥
तेरा ही स्मरण करते हैं, हम सब मिल के स्वामी।
श्रद्धा से आज कर रहे हैं, हम वन्दना तुझे स्वामी॥
तेरी राम भक्ति है सारी, साधनाओं से ऊपर।
धन्य जीवन तेरा स्वामी! था औरों की खातिर॥
दिल और मस्तक रहा तुम्हारा, माँ के चरणों पर स्वामी।
श्रद्धा से आज कर रहे हैं, हम वन्दना तुझे स्वामी॥
साधक परिवार तुम्हें ही, निशदिन सदा पुकारे।
तेरी राह पर चलने को, हम तत्पर रहते प्यारे॥
तेरे पथ पर चलने में है, सब कल्याण स्वामी।
श्रद्धा से आज कर रहे हैं, हम वन्दना तुझे स्वामी॥
तेरा जन्म दिन मिल करके, हम आज मना रहे हैं।
जो राह बताई तुमने, सब उस पर जा रहे हैं॥
विश्वास दास 'नानक' का तुझ पर सदा रहे हे स्वामी।
श्रद्धा से आज कर रहे हैं, हम वन्दना तुझे स्वामी॥

- नानक चन्द सुन्दरानी

चरणों में

लो देव! सतत मुस्कान भरा।
कृतज्ञता सम्मान भरा॥
कोमल मृदु भावों से।
युक्त-हृदय अरमान भरा॥
अश्रु-सिक्त नीरज नयन।
सतत स्मरण, अनन्य चिन्तन॥
ले आया हूँ मैं भोलापन।
श्रद्धा भक्ति से है अर्पण॥
स्वीकार करोगे हँस-हँस कर।
कुछ और नहीं कर पाया हूँ॥
श्रम-संचित जीवन भर।
उपहार चढ़ाने लाया हूँ॥
अब ध्यान बनाया करता हूँ।
एकाकार तुम्हारे चरणों में॥
अटल अचल निश्छल हो मेरा।
प्यार तुम्हारे चरणों में॥

- नरेन

विनय

हमें हे राम हे राघव तुम्हारा ही सहारा है।
न तुमको छोड़कर संसार में कोई हमारा है॥
पड़े जब भीर भक्तों पर तभी तुम दौड़ आते हो,
गिनायें क्या, कि कितनी बार भक्तों को उबारा है।
कभी तुम राम बनते हो, कभी घनश्याम बन जाते,
सुना है भक्त से सबसे बड़ा नाता तुम्हारा है।
नहीं लौटा तुम्हारे द्वार से कोई कभी खाली,
हमारी बार तुमने नाथ अब फिर क्या विचारा है।

- प्रोफेसर ब्रजलाल अग्रवाल

विरह-वेदना

तरसति जिय दरसन को तेरे।
मैं बिरहिनि ठाढ़े मग जोहउँ, जब जग जाति बसेरे।
ढरकत नैन निरन्तर धुनि धुनि, नहिं आये पिय मेरे॥
तलफत बीति रहे हैं मोकों, निसिदिन साँझ सवेरे।
कैसी करौं कहौं दुःख कासों, कठिन भये भटभेरे॥
खोज न लह्यों ढूँढि सब हार्‌यूँ नगर गाँव बन खेरे।
यह तन भार-भयो तुम बिनु पै, जिअउँ तोर अवसेरे॥
जीवन रहत दरस दै जैयो, छमि अपराध घनेरे।
'रामसरन' के हिय बसत हौ, दूरि रहो या नेरे॥

- श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल

दिगोली शिविर के भावोद्गार

संभल जाता है खल जीवन, चरण कमलों की रज पाकर।
तो उनका क्या ही कहना है, रक्खा, जिन सर पर, कृपा-कर।
न हमको जिन्दगी प्यारी, न मरने का कोई खटका।
फकत एक आसरा तेरा, मिटा देता है गम आकर॥
है नुसखा एक ही काफी, निराली शान अपनी का।
मिटाये दर्द दुःखियों के, समर्पण पाठ बतलाकर॥
बड़े वह भाग्यशाली हैं, रहे सम्पर्क में जो जो।
उन्हीं की यह भी कृपा थी, झुका चरणों में यह था सर।
उपस्थित हो न सकने का, तो कारण आप ही जाने।
यह केवल पुष्प श्रद्धा के, हों अंगीकार कृपा कर॥

- श्री चिरंजी सिंह

आँसू

ऐ! आँसुओ! निज देव की प्रिय याद में आया करो।
बह-बह के गंगा की तरह, सिन्धु में रम जाया करो॥
वो दिव्य शक्ति महान है, वो परम प्रेम स्वरूप है।
उनको रिझाने के लिए, तुम हार बन जाया करो॥
तुम तो आते ही नहीं, फिर वो भला आयेंगे क्यों।
उनको बुलाने के लिए खुद भी तो आ जाया करो॥
वो मधुर हैं जाते पिघल, प्रेमी की करुण पुकार से।
वो आयेंगे, आते ही हैं, तुम पग तो धो जाया करो॥
पद-पखारन के समय, पीछे न रहना आँसुओ।
बन के झरी प्रेम की, चरणों पे बह जाया करो॥
पोछेंगे श्री कर-कमल से, जब आँसुओ! तुमको प्रभु।
कहना कि जाते हो यदि, फिर भी तो आ जाया करो॥

- सन्तोष नांगिया

गीता विमर्श

श्रीमद्भगवद्गीता चतुर्थोऽध्याय

(गतांक से आगे)

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥31॥

'हे अर्जुन! यह यज्ञ-शेषरूपी अमृत को खाने वाले सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। यज्ञहीन मनुष्य का तो यह लोक भी नहीं होता, दूसरा कहाँ से होगा'॥31॥

पिछले अध्याय में कहा था 'यज्ञशेष को खाने वाले सन्त सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं' (3/13)। यहाँ कहा कि वह सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। वहाँ देवताओं के लिए यज्ञ करने का प्रसंग था, यहाँ तो यज्ञमात्र की चर्चा हुई है। जिस जीवन में यज्ञ है, उसका जीवन सफल है। वह यज्ञ स्वरूपतः यज्ञ ही हो सकता है, विशेष बाह्य क्रियाओं वाला हो सकता है और वह हो सकता है यज्ञ की ऊँची भावना, कर्म ब्रह्मार्पण की प्रबल निष्ठा, जो समूचे जीवन को ही यज्ञरूप कर देती है। जहाँ हमारे यज्ञ का इष्ट ब्रह्म है वहाँ उसके द्वारा ब्रह्म की ही प्राप्ति होगी। सनातन ब्रह्म कहा – पुरुषोत्तम से तात्पर्य है। वेद भी तो ब्रह्म कहा जाता है।

इतना और याद करना है –

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च॥9/24॥

किसी भी कोटि का यज्ञ क्यों न हो, यदि वह यज्ञ है, उसमें त्याग है तो उसे स्वीकार करने वाले प्रभु ही होते हैं। वही उस यज्ञ के उपभोक्ता होते हैं। कहीं वह हमारी भावना के अनुसार देवता बने हुए उस यज्ञ के अधिपति होते हैं, कहीं पर प्रेम की प्रतिमा बन कर, कहीं पर 'यज्ञ और तपों के भोक्ता बनकर', **'भोक्तारं यज्ञतपसां'** (5/29)।

जीवन में यज्ञ होना ही चाहिए। नहीं, नहीं, जीवन यज्ञरूप ही हो जाना चाहिए। जितना वैसा हो जायेगा उतनी जल्दी ही यज्ञेश्वर की प्राप्ति होगी।

जिसके जीवन में यज्ञ नहीं है उसका तो यह लोक भी नहीं है। बिना यज्ञ के तो यहाँ पर चैन नहीं मिलती। सुख इस बात पर निर्भर नहीं करता कि हमें बाहर से क्या मिलता है। यदि सुख बाह्य वस्तुओं पर निर्भर करता तो वैसा होता। अधिक लाभ में अधिक सुख होता है। पर हम तो धनिकों को दुःखी भी और धनहीनों को सुखी भी देखते हैं। सुख निर्भर करता है इस पर कि हम क्या कर पाते हैं दूसरों के लिए। स्वार्थी जीवन में चैन नहीं। जिसने देना नहीं सीखा, जिसने प्यार करना नहीं सीखा, जिसने दूसरे के लिये प्रीति करना नहीं सीखा, उसे वास्तविक शान्ति कहां? जो दूसरों को अपनाना नहीं जानता है, अपने को मिटाना नहीं जानता है दूसरों के लिए दूसरों में, उस जीवन में आनन्द कैसा? वैसे ही तो दूसरों को अपना बनाया जाता है। जिसके जीवन में त्याग है उसके जीवन में सुख हो सकता है। जहाँ त्याग नहीं वहाँ यदि आज सुख दीखता है तो वह पशुकोटि का होगा। वह भी टिकेगा नहीं। उसका स्वार्थ ही उसकी जान पर सवार हो जायेगा।

लौकिक सुख का सूत्र भी तो यही है – दूसरों को सुखी करने की भावना और चेष्टा। इसका अर्थ सक्रिय निःस्वार्थ है – जिसे सेवा कहते हैं, जिसे त्याग कहते हैं। जिसे यज्ञ कहते हैं।

पर हमें त्याग करने वाले भी दुःखी दीखते हैं, पश्चात्ताप करते दीखते हैं कि 'हाय हमने इतना किया। किसी ने हमारे लिये कुछ नहीं किया। दुनिया स्वार्थी है। हम तो ठगे गये। हमें पता होता तो हम कभी बेवकूफ न बनते।' उनकी ऐसी भावना उनके त्याग का पैमाना है। जो त्याग बदला मांगता है वह दूषित है, मांग वाला है। जो त्याग कृतज्ञता भी मांगता है, वह भी निर्दोष नहीं। यज्ञ वह यज्ञ है जिसमें सूक्ष्म अथवा स्थूल कामना छू भी न गई हो। यज्ञ में जो दुःख होता है उसका कारण हमारी अटक होती है। हमारी कामना

होती है। यज्ञ का दोष नहीं।

पर वैसा त्याग तो बहुत कठिन है। माना, पर रास्ता तो चलने से ही आता है। वह होने वाला दु:ख हमें अपनी भावना का मैल दिखा देता है। अपने त्याग को और पवित्र करने का रास्ता बताता है। उस पथप्रदर्शक का सत्कार करें, उसे मानें और आगे चलें।

लोक में भी सुख का रास्ता है यज्ञमय जीवन। स्वार्थी जीवन में तो सुख की कल्पना भूल है। वहाँ न चैन का खाना हो सकता है, न चैन का सोना। वह आसुरी जीवन है। वह राक्षसी जीवन है।

जिसका लोक नहीं, उसका परलोक कहाँ से! परलोक का आधार तो इस जन्म की ही भावनाएं और कर्म होते हैं। यदि हम बोएंगे कांटे, तो काटने भी कांटे ही होंगे। यदि हम फूल बोएंगे तो फूल मिलेंगे। जो यहाँ पर नि:स्वार्थ नहीं उसका परलोक जीवन ऊँचा कैसे हो सकता है, आनन्दमय कैसे हो सकता है? जो यहाँ यज्ञ नहीं करता, दान नहीं देता, अपने लिये जीता है वह आगे जाकर क्या कर पावेगा। उसका दिवाला तो यहीं पिट गया। साथ ले जाने को क्या है?

लोक और परलोक में जो हम अभेद्य दीवार खड़ी कर देते हैं वह हमारी कमसमझी ही होती है। इसी जीवन का प्रवाह तो उस पार जाता है। बस आर-पार, अर्थात् इस पार से उस पार दीखता नहीं। उस पार वाले तो इस पार देख ही सकते हैं। देखा भी करते हैं।

'अर्जुन तू भी यज्ञ कर, उससे सुधरेगा यह लोक भी और परलोक भी।
स्वार्थी बनकर जीवन के संग्राम से भागने की न सोच।'

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे॥32॥

'इस प्रकार से वेद के मुख में बहुत प्रकार के यज्ञों का विधान है। वह सभी कर्म से ही सम्पन्न होते हैं, ऐसा जानकर तू मुक्त हो जावेगा'॥32॥

वेद में यज्ञों का वर्णन है। यजुर्वेद में यज्ञों की ही चर्चा है। जिन यज्ञों का, प्रभु कहते हैं, मैंने वर्णन किया वह वेद में है और यज्ञ भी वेद में वर्णित हैं।

अर्जुन ने वेद की प्रामाणिकता माननी सीखी थी। अत: वेद का प्रमाण दे दिया। 'मैं अपने मन की नहीं कहता। वेद द्वारा प्रामाणिक बातें हैं। वेद यज्ञों का प्रतिपादन करता है।'

और यज्ञ कर्म से ही हो सकते हैं। बिना कर्म के तो कोई भी यज्ञ सम्भव नहीं है। यज्ञ के लिए कर्म तो करना ही होगा। इस प्रकार से भी कर्म को छोड़ने वाली बात तो सर्वथा असंगत है।

और यदि तेरी समझ में यह बात आ जाती है कि यज्ञ करना चाहिए और यज्ञ के लिए कर्म अनिवार्य है, फिर तू बन्धन से छूट जायेगा।

पहिले तो तू इस घोर विषादरूपी पाप से छूटेगा। फिर जो यह विचार है कि कर्म करने से, युद्ध करने से, बन्धन होता है, पाप लगता है, इससे छूटेगा और वेद विहित कर्म जो युद्ध है उसे करेगा। वही तेरा यज्ञ है। वह तेरी साधना होगी। समय पाकर कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाएगा। जन्म-मरण से छुट्टी पा जायेगा।

यह यज्ञ का प्रसंग यहाँ पर समाप्त हो जाता है। हमने देखा कि ब्रह्मार्पण के पारस पत्थर से छूकर कर्ममात्र को यज्ञ बना दिया और समूचे जीवन को यज्ञमय बनाने का रहस्य खोल दिया। युद्ध भी यज्ञ हो जाता है इस भावना के जगने से। यज्ञमय हो जाना ही जीवन का साफल्य है। स्वार्थी जीवन, भावनाहीन जीवन तो जीवन का निराकरण है, जीवन को खो देना है।

आगे हमें ज्ञान की चर्चा मिलेगी। इन यज्ञों में 'ज्ञानयज्ञ' श्रेष्ठ है, यह बात हमें नये प्रसंग पर ले जाती है। हमें पता चल जायेगा कि क्यों श्रेष्ठ है और ज्ञानयज्ञ वास्तव में है क्या? क्या यह ज्ञानयज्ञ कर्म का विरोधी तो नहीं, यह भी हमें जानने को होगा। विस्मय होता है यह जानकर कि शब्दों को पकड़कर लोगों के द्वारा गीता की कितनी खैंचातानी की गई है?

कर्म-ब्रह्मार्पण-योग में ज्ञानयज्ञ की चर्चा क्यों? ब्रह्मार्पण-कर्म यज्ञ होता है। वह यज्ञ भावना पर आश्रित

है और वह ज्ञान पर। हमारा ज्ञान हमारी भावना का निर्णायक होगा और हमारी भावना हमारे यज्ञ की कोटि की।

दूसरा, यह कर्म-ब्रह्मार्पणरूप यज्ञ आखिर ले किधर जाता है? ब्रह्म प्राप्ति की ओर। वह क्या कुछ बाह्य प्राप्ति है? नहीं, वह प्राप्ति तो ज्ञानरूपी है। अस्तु।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥33॥

'हे वीर! द्रव्यमय यज्ञ से ज्ञानमय यज्ञ श्रेष्ठ है। हे अर्जुन! (आखिर) सारा कर्म समग्ररूप से ज्ञान में जाकर पूरी तरह से समाप्त हो जाता है'॥33॥

द्रव्यमय यज्ञ जो द्रव्य से किया जाए। जो बिना विशेष बाह्य उपकरणों के हो ही न सके। अग्निहोम आदि यज्ञ तो बिना ईंधन, घी आदि के हो नहीं पाते। वह द्रव्यमय यज्ञ है।

ज्ञानमय यज्ञ वह है जिसमें बाहर कुछ करना धरना विशेष नहीं। जो जीवन क्रम चलता है सो वैसा ही चलता है। भीतर दृष्टि को बदल देने से, भावना के परिवर्तन से वही कर्म-कलाप यज्ञ हो जाता है। उस यज्ञ के लिए बाह्य निर्भरता नहीं। समय भी तो नहीं चाहिए और पल्ले में कौड़ी भी न हो तो भी हो जाता है। ऐसा अद्‌भुत यज्ञ! इसमें ज्ञान की ही प्रधानता है, समझ ही एकमात्र साधन है इस यज्ञ का।

ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है द्रव्यमय यज्ञ से। क्यों श्रेष्ठ है? पहले तो करने में सुगम, दूसरे प्रभाव में बली। करने में तो सुगम है पर प्रभाव में कैसे बली है? आखिर कर्म व्यक्ति के भीतर जागृति का साधन ही तो है। ब्रह्म की प्राप्ति के लिये कर्म होता है और वह तो बोधात्मक होती है। बाह्य यज्ञ तो भीतर की भावना को जागृत करने के लिए है। वह जग जाती है तब सभी कर्म ही यज्ञ हो जाते हैं। फिर क्या आवश्यकता रहती है बाह्य यज्ञ की। जब तक प्रभु को हम मूर्ति के बिना प्रतीत नहीं कर पाते तभी तक तो उसे अवलम्बन की आवश्यकता होती है और अपनी भेंट देने की। जब वह तन में, मन में, नैन में रम जाता है तब 'वाको कहा सन्देश।'

इस प्रकार से यज्ञ का साधन स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाता है। इस साधना में भावना ही सर्वेसर्वा है। बिना भावना के ब्रह्मार्पण कुछ भी नहीं हो पाता। बिना भावना के दिये फूलों को भगवान् नहीं लेते हैं। जितनी ऊँची और प्रबल भावना होती है, उतना ही हम प्रभु के समीप पहुँच जाते हैं, भावना के जग जाने पर सामान्य कर्म ही भावना के वाहक हो जाते हैं, अतः विशेष कर्मों की आवश्यकता नहीं रहती। वह छूटते जाते हैं, जैसे प्रेम-भक्ति के जगने पर वैधि-भक्ति अनावश्यक होकर स्वतः निष्प्रयोजन हो जाती है वैसे ही। भावना तो ज्ञान ही है हृदयगत जगा हुआ। ज्ञान जब हृदय को प्रभावित करता है तो भावना जगती है। कर्म द्वारा जगी हुई भावना ज्ञान को प्रकट भी कर देती है। बाह्य कर्म धीरे-धीरे भावना जगाता है। निष्ठा का परिपाक होता है। निष्ठा से किया कर्म भीतर निर्मल कर देता है। जग जाता है इस प्रकार से ज्ञान का दीपक। कर्म के अवलम्बन की आवश्यकता ही नहीं रहती। खाना पीना भी ब्रह्मयज्ञ हो जाता है, ब्रह्मार्पणयोग हो जाता है।

इस प्रकार से इस पथ का पथिक बाह्य कर्मरूपी अवलम्बनों से मुक्त होता हुआ यज्ञमय जीवन में प्रवेश कर जाता है। कालान्तर में ज्ञान का दीपक जग उठता है। वही मूल सूत्र 'ब्रह्मार्पण ब्रह्म हविः' उसके लिये घटित हो जाता है।

और उस बोध के जगते ही कर्म कर्म नहीं रहता, अकर्म हो जाता है। साधक कर्ता नहीं रहता, अकर्ता हो जाता है। कर्म का कर्मत्व ही समाप्त हो जाता है ज्ञान के जग जाने पर। यह है कर्म की परिसमाप्ति, पूर्णरूपेण समाप्ति। बाह्यरूप से तो कर्म की परिसमाप्ति असम्भव है। भगवान् स्वतः ही श्रीमुख से कह चुके हैं (3,5)। कर्म के स्वरूपतः संन्यास का प्रश्न ही नहीं उठता, यह हम पीछे लिख ही आये हैं। इस योग में उसके लिए जगह नहीं है और वह ज्ञान कैसे पाया जाता है? (क्रमशः)

Letter No. 5 : Shri Ram : Almora.

25.06.1944

My dear .....,

Yours to hand for which many thanks. I hope that you are following my instructions about studies and meditation in full. I should like you to proceed one step ahead now. Upto the present you have read Aurobindo's philosophical literature and now I would like you to turn to the practical side of it. I should suggest 'Meditations of the Mother' as the first thing for study. Let it not be an objective study. The book should be given a thorough mastication and it should lead to thorough assimilation. Read less, meditate more upon it so that it no longer remains meditation of the mother. I have every hope that you will like them so much that all this will come spontaneously.

The book fell into my hands during my first visit to Agra in December. A glance through, revealed that I myself had for years together meditated on the same lines. The book is full of sincere thought which is useful for all sadhaks of the path we follow.

This you may do whenever you find yourself in the mood for it, but I should certainly like such thoughts to be your bed time companions at least. The book will indicate the lines, you will catch the rhythm.

As to the name, carry it on in the morning and evening in formal sittings and otherwise, when you are not meditating. The two are complementary. It is not enough to know that the name has transformed so many I know of myself and I know of quite a good number whom I have the privilege to serve in the spiritual field. A tree is known by the fruits thereof. It will help to awaken within you the mighty reservoir of strength and put you in touch with the Divine. So it has done in my case and so it does in the case of many whom I know. When I set out on the path, I had no more testimony than of the above type. Yes, I did waver once, but the Lord's grace brought me back and with a renewed faith of which the intensity can only be imagined, I took a plunge, and closed the door – 'For me there is no way but this' and Lo! gradually the curtains were lifted and His Grace descended! I then did not know the why of it.

My meditations were always of the Aurobindo type even when I did not practically know him – through his writings.

The suggestion about meditation gives the intellect, heart and will, some work to do. In the course of progress, a stage comes when the name and meditation both cease for ever.

I always tried to keep an open mind and so even now. My views are not fixed for ever. If I realise a higher truth, the present convictions will fall instantaneously.

I shall also propose that you take living interest in the business and household duties and the welfare of its members willingly, as an offering at His feet. Only let this fact be remembered. This is necessary for your spiritual evolution.

Relax yourself. Have faith that all shall come off well. Faith will spontaneously lead to relaxation. It will strengthen your nerves. You are in His hands and His Grace is upon you. It will gradually transform you. All the dross shall be cleared away in course of time. Have faith and impatience will leave you. The Divine is our caretaker. Our blunders are also the necessary steps of the path. Saints would not have been Saints but for the blunders. Have faith in Him and suffer your ills pleasantly. Try not to suppress them. True Spiritual Sadhana is nature cure. It rests upon our faith in the Divine plan. All tuning forks are good but we use the one which is with us, which some one has magnetised for our sake: so with name.

I have written more than enough.

As to the Gita I shall give a few hints only, more in my next. (Chapt. III) Verse 32: It lays before us the negative consequences. Surrender of actions is the preparatory step for surrender of self and mergence. Hence the consequences. True knowledge puts us in harmony with the Divine and hence beyond reactions. नष्टान् (Nashtaan) Lost (to themselves), to the Divine i.e. lost – fallen from the way.

This is not an eternal condemnation. The self motivated action hits back and gradually leads to the awakening of the consciousness.

Why should we surrender our actions to Him? Who is He? We do and we shall have fruits.

The way to get beyond reactions while acting is to put oneself in tune with the Divine Will. Surrender of actions is to realise that HE is working through you. You become now an actor. So about the doing of sadhna. At a particular stage, the sadhak actually realises that it is the Divine who is doing sadhna in him. Then he is practically free.

Verse 33: It deals with the futility of suppression and aggression as regards individual make-up is concerned.

Action is the expression of what we are. Every act in all the planes bears the impressions of our individuality. This may not be so much visible on the gross plane but it is quite evident on the subtler planes. There is a man in whom desire is strong. His most unselfish (seemingly) act will bear that impression.

We foolishly think that we shall change others by words and precepts. Even our words are interpreted in the light of the personality that has been developed and the experience behind it. Restraint means one thing to one and another to some one else. Look to yourself, could you change your habits instantaneously. We have subtle bodies and they are accustomed to vibrate in a particular way. To change ourselves is to change our habits, to replace the matter of those by different matter – this is the occult side of it.

It does not mean that change can not be effected. It can be, but by changing प्रकृति not by forcing the expression just as in nature cure, cure the body, not the symptoms.

For that, desire must come from within. Help will come from without. Faith in self and faith in Divine – patient effort – all these go to change *prakriti*.

That will do for the present.

With sincere regards,

Yours in the Lord,

Ramanand

❖ ❖ ❖

Letter No. 6 : Shri Ram : Digoli, Almora.

July 9 & 10, 1944

My dear .....,

'Bases of Yoga' by Sri Aurobindo, I suggest as a substitute. I hope the book will give you much needed help. Again, it is to be well masticated.

I knew that you had never taken interest in business (from your own statement), and that was why I suggested it. We have to establish a balance in extroversion and introversion. Too much of thought with little real interest in outward affairs generally leads to disbalancing of the personality. Well, if you cannot take active interest in business on account of your health, you may interest yourself really in the members of the family or anything else excepting yourself. Of course, you understand that the interest must be disinterested अनासक्त (*Anasakt*) as far as possible. In the present stage of development it will do you a lot of good physically and spiritually. I know that the family affairs are looked after by you. I am asking you only to put in more life. Let them not appear as a burden which has to be carried, but as a privilege of service, a willing offering at His feet. This little change of attitude will produce the desired effect on you. I have every hope.

I followed carefully the 'Viceroy – Gandhi' correspondence. Who can doubt the braveness of Mahatmaji. Nor have I any quarrel about his weapon of Ahinsa for it has produced a lot of awakening. As far as his principles go, they are his. I do not say that we should hate others or harm others. For me this ideal of swadharma stands much above the individual dharmas, yamas or niyamas; and swadharma is the demand of the particular circumstances from a particular individual. Hence the difference between swadharma for a Brahman and a Kshatriya. Swadharma in reality is the line of evolution for a particular individual. This is the call to duty for duty's sake. Who responds to it, for him hinsa and ahinsa cease to have any meaning. He is lifted above the plane of action and reaction, for him attachments cease, and together with them their consequences – the bondages.

To me Gita has, the clarion call for Arjun to do his duty – to fight, which he does irrespective of the consequences. This is the doctrine which can rejuvenate the nation and individuals alike. It can instill a sense of self respect and lift the individual above all attachments and fears. This is the doctrine of dignity of labour and equality of all works. Gita ethics is spiritual ethics, and its Goal the ultimate Goal which takes the individual above the relative good and evil, hence the relative pleasure and pain.

I have put in the above remarks because of their bearing on Karmayoga, the topic of the 3rd chapter of the Gita. I give below brief remarks on Sloka 34 & 35.

Sloka 34: It is a warning for those who seek to tread the path.

Attraction and repulsion are inherent in the sense organs (for objects of sensations). Some objects exert the pull so much that the whole being is thrown out of gear and one is led away by them, while others cause so much repulsion that the same thing happens in the other direction. In order to be able to do our duty we must be above both, otherwise we will be following sense objects or running away from them, rather than following swadharma – the law of our life. Without self control, we can not tread the path.

परिपन्थिनौ *(Paripanthinau)* obstacles on the way. What? The raga and dvesha, not sense organs or sense objects. Because they deviate him. RAGA for his kinsmen was standing in the way of Arjuna's performance of his duty. It is these which cloud our sense of duty in every day life. They affect not only our sense organs, they affect our hearts and our intellect.

We are not to run away from the objects of senses or objects of relations, but we have to maintain balance in their midst. A temporary withdrawal may be advisable for a short period, but only as a temporary measure. A soldier can overcome his fear only in the battlefield and so also the stallion. Similarly we have to learn balance while in their midst. All results obtained otherwise are unreliable.

To obtain self-control, we have to learn to consider the effect of our various acts, and to draw conclusions therefrom. Secondly, we are to develop the attitude of a disinterested witness to learn to see the sense organs, manas, and budhi as outside of ourselves. Watch them at their play but do not try to suppress them. Gradually they will begin to come round.

The essence of self control is balance, not asceticism.

Sloka 35: This contains the main teaching of the Gita interpreted in the light of the historical background, it simply means that the Chaturvarnya-dharma should be fulfilled, irrespective of the apparent flaws. We come upon the secret of the teaching when we question why. Why should a Kshatriya fulfil his Kshatriya-dharma even if it involves the unpleasant act of dealing death to the enemy? Because doing so will lead to his evolution. That is the law of his being, the path of his evolution determined by his past evolution in this and previous births. That again is the reason why he is born in a Kshatriya family with a heroic

tradition. He needed the present experience (though we are born according to our Karmas, but the choice is so made that we go ahead smoothly in evolution while working out our Karma).

Moreover, a Kshatriya will leave the work of a Kshatriya and take to a Brahamanic life only when he finds the latter more promising or more pleasant in its fruits, or in its performance. That again can only be when he runs after external ends, which means bondage. If a person has no attachment, if he is Sama सम (balanced) any external end cannot attract him for its own sake. e.g. **न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।** etc.

Gita XVIII.10: To give up the line of one's evolution for external ends is to fall spiritually.

Hinsa leads to pain and Ahinsa to pleasure. Action equals reaction. If the object of one's action is to have as much physical pleasure as possible, then that would have been advisable. But that is neither possible for long, nor advisable because it is not necessarily consistent with spiritual growth. The pleasant and the good is not always the same. Hence the way is to look neither to the pleasure giving nor to its opposite, but to look for that which leads to our evolution – the Swadharma.

This is not purely individualistic or egoistic. To ignore the law of life for the transitory pleasure of another is as much degrading to oneself, as doing the same for one's pleasure. If we honour the law, we honour his life and its purpose. We expect the same from others and unseen we lift others and establish order in the society.

Society has trained a Kshatriya for a particular work, if he gives it up he is doing harm to the society as well. It is the individualistic outlook which thinks of Hinsa and Ahinsa in egoistic terms (as reacting upon himself) without regard to social needs. A hangman is as necessary for the society as a Brahmin and if all hangmen give up their profession, society would be the sufferer. The doctrine of Swadharma is thus a great socialistic institution.

I have taken up this verse in the historical background, but it puts forth a universal doctrine. Follow the law of your being, irrespective of external consequences on your self or others. That is the way to go ahead and be free from pleasure and pain, and reach the Highest. What is the law of one's being and how to discover it is an allied subject. When we are on the path of self control and have begun to aspire for something High, gradually we shall discover it.

This much is more than enough for the present.

Yours in the Lord,

Ramanand

❖ ❖ ❖

श्री राम

पत्र-1 (पुरानी सं. 1)

प्रियवर, सप्रेम हरिस्मरण - आपका पत्र मुझे मिला। धन्यवाद! राम भगवान् के विधान में सुख तथा दु:ख दोनों ही हुआ करते हैं। शरीर के जीर्ण होने पर उसका शान्त होना भी सर्वथा स्वाभाविक है। हमें दु:ख होता है अपनी ममता के कारण। आप समझदार हैं मैं इस विषय में बहुत क्या लिखूँ? आशा है कि आपको इस बात का सन्तोष होगा कि आपने माता-पिता की सेवा का कर्तव्य पालन किया।

आपका अपना, प्रभु के नाते,
रामानन्द

❖ ❖ ❖

पत्र-2 (पुरानी सं. 2) **18.2.1943**

श्रीयुत् ....., सप्रेम हरिस्मरण! आपका पत्र मुझे आज यहाँ पर मिला।

(1) आपने लिखा है कि दो-तीन महीने के बाद आपका चित्त भजन में बैठने पर नहीं लगता। यह कोई चिन्ता की बात नहीं। प्राय: इसके पीछे कोई कारण रहता है। हमारे अपने ही संकल्प अथवा शारीरिक अस्वास्थ्य ऐसी घटनाओं का कारण होते हैं। शरीर को स्वस्थ रखने का प्रयत्न करना चाहिए और कोई संकल्प मन में प्रबल हो रहा हो उसे शान्ति पूर्वक करना चाहिए जिससे उसका वेग क्षीण हो जाये। चाहे मन लगे अथवा न लगे, बैठने का नियम पूरा करना ही चाहिए।

(2) आपने काम और क्रोध से बचने का उपाय पूछा है। काम तथा क्रोध दोनों परस्पर सम्बद्ध उद्वेग हैं। इनका इलाज भी प्राय: इकट्ठा होता है -

प्रथम - इस बात को ठीक तरह से समझ लीजियेगा कि इन्द्रियों से मन प्रबल है, मन से बुद्धि बलवती है और आत्मा बुद्धि से भी अधिक बलशाली है। आप आत्मा हैं। यह रोग काम तथा क्रोध मन के विकार हैं। आप मन से अधिक बलवान हैं। मन आपका है। आपका दास है, वह आपकी इच्छा के विरुद्ध चल नहीं सकता।

आप संकल्प कीजियेगा - मैं चाहता हूँ कि मन में क्रोध का वेग उत्पन्न न हो, वह हमेशा हर परिस्थिति में शान्त बना रहे। आप सच जानिये व दृढ़ निश्चय कीजियेगा - ''मैं यह कर सकता हूँ। यदि आज तक लोगों ने मन पर काबू पाया है तो मैं भी पा सकता हूँ।'' यह मन मेरा है और उसे मेरी आज्ञा का पालन करना होगा।

दूसरे - उस परिस्थिति को लीजिये जिसमें आपको क्रोध आता है। प्राय: किसी व्यक्ति को देखकर आप मुस्कराया करें। बाहर की मुस्कान धीरे-धीरे अन्दर परिवर्तन उत्पन्न करेगी। कोई आपको कुछ कहता है तो उससे आपका कुछ घटता नहीं है, आप उसकी बात को हँसी-हँसी में टालने की कोशिश करियेगा। जिस अवस्था में आपको क्रोध आता है, आप मन ही मन उसका ध्यान करें। आप अमुक स्थान पर हैं और अमुक व्यक्ति आपको कुछ ऐसी बातें कह रहा है जो प्राय: आपके क्रोध को भड़का देती हैं। अब आप (इमेजिन) कीजियेगा (अन्दाजा लगाईयेगा) कि आप वहाँ पर उसकी बातें शान्त भाव से सुन रहे हैं और हँसी-हँसी में आप उनको टाल रहे हैं। इसी प्रकार दूसरी परिस्थितियों का ध्यान कीजियेगा। यदि आपसे कोई

हँसी करे तो आप उससे हँसी कीजियेगा, यदि आप को चिढ़ावे तो आप उसको चिढ़ाइयेगा नहीं। क्रोध को दबाने से, उसे हँस देना अच्छा होगा।

यदि आप इस तरीके से बरतेंगे तो शीघ्र ही आपके गुस्सा होने के अवसर कम हो जायेंगे।

तीसरे - आप जानते हैं कि मनुष्य जीवन का सार भगवत् प्राप्ति है। जब तक आप अपने को क्रोध के वश में रखेंगे, आप इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते। आप इस वृत्ति के महत्व को समझते हैं। क्रोध के वशीभूत होने का अर्थ है हरि मिलन की अवधि को और भी लम्बा करना। क्रोध कोई आपके बाहर की चीज़ नहीं है, न आपसे बलवती है जो आप इसके आगे अवश्य झुकें। आप तो आत्मा हैं। शान्त और शक्ति के स्वरूप हैं, श्री राम के अंश हैं। सतत् आनन्दमय हैं, आप पर क्रोध कैसे काबू पा सकता है? आप अपने स्वरूप को, आत्मरूप को समझियेगा। अतः रोज़ सोते समय बैठकर विचारिये कि आप परमपिता के पुत्र हैं, शक्ति तथा आनन्द से परिपूर्ण हैं। सदा शान्त हैं, हर परिस्थिति में शान्त हैं। कोई भी वस्तु आपको चलायमान नहीं कर सकती। अर्थात्-

''मैं शान्त हूँ, शक्तिमय हूँ, आनन्दमय हूँ।''

इसको बार-बार विचारिये और फिर सो जाइयेगा। प्रातः उठने पर सबसे पहले यही करिये। कम से कम पाँच मिनट तक ऊपर वाली भावना कीजिये और संकल्प कीजियेगा कि आज दिन में मैं क्रोध को अपने पास फटकने नहीं दूँगा। मैं दिन भर मुस्कराता रहूँगा और प्रसन्न रहूँगा।

चौथे - दिन में जब ऐसी परिस्थिति आए जिसमें आपको क्रोध आया करता था आप अपने स्वरूप का चिन्तन कीजिये-

''मैं शान्त हूँ, शक्तिमय हूँ, आनन्दमय हूँ।
क्रोध मेरा शत्रु है, मैं इसे हँसकर भगा दूँगा।''

पाँचवें - अपने भोजन में से लाल मिर्च तथा मसाले बिल्कुल निकाल दीजिये। प्याज भी जितना कम कर दें, अच्छा होगा। सब्जी अधिक खाइये, नमक कम खाइये। प्रातः नित्य खुली हवा में सैर कीजिये। यदि आसन कर सकें तो अति उत्तम होगा। कब्ज नहीं होना चाहिये।

यदि कभी कब्ज की शिकायत हो तो चिकनी मिट्टी को पानी में गूँथ करके 1/3 इन्च मोटी रोटी बनाकर सोते समय पेट पर बाँधकर सोइये। प्रातः खोल दें। 3-4 दिन ऐसा करने से कब्ज दूर हो जायेगा।

आप इन पाँचों उपायों को करें। एक डायरी रखियेगा, उसमें लिखिये कि दिन में आपको कितनी बार क्रोध आया। कितने ज़ोर का आया और कितनी देर रहा। इस पत्र को बार-बार पढ़ियेगा।

एक महीना इसका अभ्यास करके रिपोर्ट भेजियेगा। फिर मैं आपको काम के बारे में और बातें बताने का प्रयत्न करूँगा। याद रखिये कि यदि हम कुछ प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें उसकी कीमत देने के लिये तैय्यार रहना चाहिये। श्री रामनाम का चिन्तन सतत बना ही रहना चाहिये। वह शान्त अमीरस है, जिसके जाप से शान्ति की धारा अन्तःस्थल में प्रवाहित हो उठती है।

आपका अपना, प्रभु के नाते,
रामानन्द

इन्सानियत

हे प्रभु, मैं एक साधारण इन्सान हूँ। मुझ में वह सभी कमजोरियाँ और विकार हैं जो साधारण मानव में होते हैं। मुझ में बल नहीं कि मैं आदर्श मानव बन सकूँ। आपकी कृपा से ही यह सम्भव हो सकता है कि मैं सच्चे अर्थों में इन्सान कहलाने योग्य बन जाऊँ। आप ऐसी कृपा कीजिये कि इन्सानियत के सभी उसूल मुझ में कूट-कूट कर भर जायें। यदि तेरी कृपा का एक बिन्दु भी मुझ पर बरस जाये तो मेरे समस्त पाप, मैल पल भर में धुल जायें। आपकी कृपा को प्राप्त करने पर ही मैं दूसरों को भी इन्सान बनने के लिये प्रेरित कर सकती हूँ।

जो मनुष्य जाने-अनजाने में छोटे-छोटे पापों को बहुत मामूली समझकर किये ही जाता है तो उनको करने का उसका स्वभाव बन जाता है। शनैः-शनैः बड़े-बड़े पाप भी करने में वह नहीं हिचकता। अन्त में वह विपत्ति का शिकार बनता है और अपनी करनी के फल भोगता है।

जो दिन जीवन के बीत चुके, वह तो लौट कर आने के नहीं। इसलिये जितना भी जीवन शेष है उसका सदुपयोग करना चाहिये। प्रभु की शरण लेने से तथा उसके नाम का स्मरण करने से पिछले पाप धुल जायेंगे, इन्सान से शैतान निकल जायेगा। प्रभु की कृपा बरसेगी, हम निर्मल हो जायेंगे और इन्सान सच्चे रूप में बन जायेंगे।

इन्द्रियों के सुख के लिये, सांसारिक सुख के लिये मानव कितनी दौड़-धूप करता है परन्तु अन्त में आनन्द और शान्ति नहीं मिलती। सुख और शान्ति तो इन्सान बनने में मिलेगी, प्रभु का हो जाने में मिलेगी। यह तो उसने अपने कोष में रख छोड़ी है। विषयी जीव उस कोष तक नहीं पहुँच पाता। आनन्द और शान्ति की प्रतीति तो अपने को बदलने पर अपने अन्दर ही होने लगती है। हमें अपने को बदलना होगा। इन्सान बनना होगा।

उत्तम पुरुष भी दो तरह के होते हैं। एक वह जो प्रभु के सिवा कुछ जानते ही नहीं जैसे बालक माँ के सिवा किसी का आसरा रखता ही नहीं। प्रभु की जो इच्छा होती है वही वह सहर्ष स्वीकार करते हैं। दूसरे वह इन्सान होते हैं जो प्रभु के विधान में अटल विश्वास रखते हैं। उनके जीवन का लक्ष्य होता है पवित्रता, विनम्रता और प्रभु में दृढ़ विश्वास।

यदि हम प्रभु-प्रेमी बनना चाहते हैं तो शुभ-कर्म करें, शुभ करने का फल न चाहें। हमारी इच्छा स्वप्न में भी यह न हो कि हमें संसार में प्रतिष्ठा और मान मिले। दुनिया वाले हमारी वाह-वाह करें। हम अपनी दीनता प्रभु के समक्ष, उस जगतजननी माँ के समक्ष प्रकट करें। संसारी भोगों के लिये हमारा जीवन लक्ष्य न हो, बल्कि माँ के चरणों में अपने सर्वस्व को अर्पण करने के लिये हो। हम 'माँ' से संसार के सुख न मांगें बल्कि अपने अहम् को, घमण्ड को चूर-चूर कर देने को। हम जो भी शुभ कर्म करें तन्मय होकर करें। यह समझें कि भगवान ने मुझ अकेले को यह कार्य चुपचाप करने के लिये सौंपा है। यह कार्य किसी पर प्रकट न हो, जब तक हम सच्चे साधक नहीं बन जाते। सीधी राह पर जाना चाहिये। विपत्ति मिलने पर शोक, सम्पत्ति मिलने पर प्रसन्नता प्रकट नहीं होनी चाहिये। सम्बन्धियों से जितने धक्के मिलेंगे उतना ही प्रभु दयामयी माँ अपने निकट बुलायेगी। वह तो वही करेगी जिसमें हमारी भलाई है – सब आशाओं को मारो, पर एक आशा को बनाये रखो, जो प्रभु की राह पर चलाये, वह

आशा बढ़े, क्योंकि वह हमारा मित्र है।

दुनिया में भगवान की याद से बढ़कर कोई पुण्य नहीं, उसको भुला देने से बढ़कर कोई बड़ा पाप नहीं। हमारे अपने बल से तो मन वश में नहीं होगा, प्रभु के बल पर पूर्ण विश्वास करें और चुपचाप उसकी याद करें। याद करते-करते हमारी स्थिति अच्छी हो जायेगी। फिर दुनिया का कोई दु:ख नहीं अखरेगा। हमारी हर एक इच्छा वह 'माँ' पूर्ण करेगी। फिर मन में प्रभु और उसके प्रेमियों के मिलने और हरि के गुणवाद सुनने और गाने के सिवा कोई इच्छा रह ही न जायेगी। पर हम यह सब कुछ न करके, चाहते हैं संसारी आराम, अपने मित्रों का प्यार, उनसे मान और इज्ज़त, जो हमें पग-पग पर ठोकरें खिलाती और रुलाती हैं, जबकि दयामयी माँ दोनों बाहें फैलाकर हमें पास बुलाती है। प्रभु भक्त सच्चे साधक बार-बार आदेश देते हैं, जाओ माँ बुला रही है। उसे सच्चे शुद्ध हृदय से जोर-जोर से पुकारो। पर हम इतने बहरे हैं, उधर ध्यान ही नहीं देते। अगर हम 24 घण्टों में से एक मिनट भी उस माँ को सच्चे हृदय से पुकारें तो हमारे दिन-रात का सारा मैल धुल जायेगा, जब माँ का स्पर्श होकर दो आँसू गिरेंगे हमारे।

– श्रीमती कृष्णा सूरी

(पुरानी पत्रिका से उद्धृत)

❖ ❖ ❖

विनय

जगत पिता परमात्मा, परमधाम श्री राम।
श्रद्धा सहित गुरुदेव को, नत मस्तक प्रणाम।।
दया कर देव तुम आये, बन किंकर का सहारा तुम।
बहती नाव दरिया के, बने आकर किनारा तुम।।
पड़े गफलत में सोते थे, कुछ भाग्य को अपने रोते थे।
दरिया-ए-गम में बहते थे, पकड़ कर बाँह उभारा तुम।।
कृपा के हम भिखारी हैं, दया के आप भण्डारी हैं।
इसी आशा-भरोसे से, कराया है गुज़ारा तुम।।
निर्मल प्रेम अविरल भक्ति, दो दयामय दिव्य शक्ति।
रहे चरण कमल में पुनीत रति, करो जीवन सफल हमारा तुम।।
डगमग यह पग चलते रहें, राह दिखाई हुई पर जमते रहें।
शीश नित्य प्रति चरणों में झुकते रहें।।
अति करुणा से हमको निहारो तुम।

– श्री चिरंजी सिंह

हे मन! हो मातृ शरणे

''मृत्यु अनिवार्य है, इस वास्ते किसी श्रेष्ठ आदर्श के लिये मिट जाना उत्तम है। ऐसा संकल्प हो तुम्हारा।''

– विवेकानन्द

जरा मानव हृदय की कौतुकी क्रिया तो देखो! दिन-रात अपने समक्ष भगवान् काल भैरव के कराल ताल बद्ध नृत्य को देखता हुआ भी अबोध है। आश्चर्य है। प्रलयंकर का डमरू नाद भी तेरी जड़ता खोने में असमर्थ? भयंकर चीत्कारें चारों दिशाओं में गूँज उठीं और तेरे सिर में जूँ भी न रेंगी? सातों लोक कम्पित हो उठे हैं। गिरि शिखर चकनाचूर हुआ चाहते हैं, नदियाँ उमड़ पड़ना चाहती हैं, मेघ गर्जना के लिये उत्सुक हैं। पाप, अत्याचार, छल-कपट तथा भय और अविश्वास से प्राप्त आज पाप अपनी सीमा पर पहुँच अट्टहास कर रहा है। प्राणी प्राणी के खून का प्यासा एक दूसरे के विनाश का साधन खोज रहा है, रे मन फिर भी तू इस संसार में फंसा है!

शायद तू सोचता होगा तू सुख में है। जन्म लेना, बड़ा होना, पढ़ना-लिखना, विवाह करना, गृहस्थी करना, खाना-पीना, सोना – क्या यही बड़ा भारी काम है? धनोवृद्धि, किसी सुन्दरी की कृपा कटाक्ष और मान – क्या यही जीवन का लक्ष्य है? अभी जीवन है वह ऐसा ही रहेगा मानो इसका अन्त ही न होगा? तुझे मरणोत्तर जीवन के लिये कुछ करना ही नहीं है? परतु यह सब तेरे मद भरे यौवन का भ्रम मात्र है। जिसे यह यौवन रूपी पीलिया हो जाता है उसकी दृष्टि में सब कुछ पीला ही पीला है। अरे प्राणी! 'सत्य' औषधि का सेवन तो कर, तेरा पीलिया चला जायेगा और रंगों का असली रूप तू देख सकेगा।

किसी कवि ने कहा है –

चार दिन है शानो शौकत का खुमार,
मौत की तुर्शी नशा देगी उतार,
जब उठायेंगे जनाजा मिलके चार,
हाथ मल-मल कर कहोगे बार-बार,
किसलिये आये थे और क्या कर चले,
जो यहाँ जोड़ा यहीं पर धर चले।

रे मन! कितने शवों को रोज अग्नि में धधकते हुए राख के ढेर बनते देखा, कितनी युवतियों को अधखिले यौवन में ही वैधव्य के अभिशाप से बँधे पाया, कितने मासूम बच्चों को अनाथ हो कर दर-दर भटकते देखा है, कितनी वृद्ध माताओं के वृद्धावस्था का एक मात्र दीपक बुझते देखा पर अपनी मौत को भूल गया? इसका क्या ठिकाना कब पा जाये।

जिन्दगी झौंका हवा का है, हवा हो जायेगा,
जिस वृक्ष पर बैठा है बनकर फूल वह मुरझायेगा,
इक रोज़ औरों की तरह मरने की बारी आयेगी,
किसकी रही दुनियाँ में जो तेरी यहाँ रह जायेगी।

इतिहास के पृष्ठों को भी पलटकर देख, रे मन। सिकन्दर नेपोलियन जैसे वीर योद्धा जिन्होंने विश्व शक्ति को ललकारा और उस पर विजयी हुए, उन्हें भी उस काल-शक्ति के आगे घुटने टेकने पड़े। बड़े-बड़े देश भक्त, समाज सुधारक, रूपवान् संसार में आये और अन्त में काल का गाल बने। क्या कोई इससे बचा है? मृत्यु अनिवार्य है, सृष्टि का विनाश अवश्य है, संसार में जो जन्म लेता है उसके लिये मृत्यु से बचना असम्भव है। शीघ्र ही संभल जा! उस समय की प्रतीक्षा न कर जब संसार की ठोकरों से तंग आकर तू संभले। तुझे संसार ही निकाल फेंके और तुझे कहना पड़े **''बड़े बेआबरू**

हो कर तेरे कूचे से हम निकले।'' अपना ठिकाना पहले ही देख ले ताकि संसार तुझे न निकाले, तू स्वयं संसार को छोड़ कर जाये। शान तो उसकी है जो मकानदार के कहते ही मकान छोड़ दे। लड़ाई झगड़ा होने पर पुलिस के द्वारा जबरदस्ती निकाला जायेगा। मौत को याद रखने वाले ने ही जीवन पाया है। मृत्यु को गले लगाने वाला ही मृत्युञ्जय बना है। शव की राख लपेटने वाला ही शिव बना है। नारायण स्वामी की दिव्य वाणी है –

दो बातन को भूल मत, जो चाहे कल्याण।
नारायण इक मौत को दूजे श्री भगवान्।।

इस वाणी का पालन करने से निराश जीवन में आशा का संचार होगा, जीवन की कालिमापूर्ण रात्रि में कहीं चन्द्रछटा का प्रकाश होगा, श्याम घटाओं के वक्ष में विद्युत की चमक होगी, मृत्युमय संसार में अमृतत्व का विकास होगा, अनित्य संसार में नित्य प्रभु का साक्षात्कार होगा।

दु:ख विपदाओं और मृत्यु से भरा संसार फिर कष्टप्रद न होगा। प्रत्येक दु:ख के पीछे महाशक्ति की कृपा का आनन्दमय स्पर्श होगा। ऐसा समय आयेगा। रे मन! मुझे पूर्ण विश्वास है जब तू स्वयं उस महाशक्ति को सब कुछ समर्पण कर सदा के लिये निश्चिन्त हो जायेगा। युगाचार्य श्री स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने एक पत्र में लिखा है ''..... जब कराल काल भेंट करने आता है और पिता की दीन पुकार और माता के विलाप की परवाह न कर हृदय को विदीर्ण कर जाता है, जब शोक ग्लानि और नैराश्य का बोझ असह्य हो जाता है, जब मानसिक क्षितिज में असीम विपद और निपट निराशा छोड़कर और कुछ दिखाई नहीं देता, तब अन्तर्चक्षु के पट खुल जाते हैं और अकस्मात् ज्योति के प्रकाश से मन की आँखें चौंधिया जाती हैं, स्वप्न का तिरोभाव होता है और आध्यात्मिक दृष्टि से सृष्टि का महान् रहस्य प्रत्यक्ष दिखलाई देने लगता है। उस बोझ से बहुतेरी नौकायें डूब जाती हैं परन्तु प्रतिभासम्पन्न मनुष्य जिसमें बल और साहस है, उस समय उस अनन्त, अक्षर परमानन्दमय ब्रह्म का साक्षात्कार करता है ....।''

स्वामी जी ने आगे लिखा ''प्रभु से प्रार्थना करना न भूलो।'' आओ पार्थ-सारथी, आओ, मुझे भी एक बार उपदेश दे जाओ कि तुम्हारे प्रति जीवन अर्पण करना ही मनुष्य जीवन का सार है और परम धर्म है। जिसमें मैं भी पूर्वकाल की महानात्माओं के साथ दृढ़ और शान्त भाव से कह सकूँ 'ॐ श्री कृष्णार्पणमस्तु .....।'

जाने अनजाने में घोर विपदा आने पर जब प्राणी अपने को प्राण संकट में असहाय व निर्बल पाता है तो उसकी अन्तरात्मा काँप उठती है। उसे किसी का सहारा चाहिये। ''डूबते को तिनके का सहारा'' घोर अन्धकार में कुछ न दीखने पर छोटी-मोटी सांसारिक शक्तियों का सहारा लेता है (धन, स्त्री पुत्रादि) परन्तु कोई भी सहारा देने योग्य नहीं। उनसे अपना ही भार नहीं उठता औरों का क्या उठायेंगे। अरे मन! सहारा लेना है तो ले उस अनन्त महाशक्ति का, जिसके वरद हस्त का कृपा पात्र होने पर मृत्यु ही नहीं होती। वह है ''अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूप'' वह द्वेष नहीं जानती वह प्रेम स्वरूप है। वह माँ है अपने बच्चों को हृदय से लगाना जानती है। वह अपने बच्चे को दु:खी नहीं देखना चाहती। इसी से उसने निमन्त्रण किया है मृत्युपाश से मुक्त होने का। जिसने शिशु के जन्म लेने से पहले ही माँ के स्तन में दूध भर दिया, पेट बनाने से पहले खाद्य वस्तुओं का उत्पादन कर दिया, रोग होने से पहले औषधियाँ उत्पन्न कर दीं, उसी माँ ने मृत्यु बनाने से पहले अमृत भी बना दिया। वह अमृत है महाशक्ति का

अवतरण व जागृति, महाशक्ति को सर्वस्व समर्पण। जिसने भी अपने को उस परमानन्दमयी माँ को समर्पण किया वही प्रहलाद की भाँति मृत्यु के सिर पर पाँव रख कर आनन्द धाम को चला गया। भूल नहीं रे मन! उसने प्रतिज्ञा की है ''मम प्रण शरणागत भय हारी'' तथा ''सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज –'' आदि ''बीती ताहि विसार दे आगे की सुध ले।''

वह महाशक्ति संसार में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन में अचल और अपरिवर्तनीय है। वह गुणमयी माया से परे, मन बुद्धि और इन्द्रियों से अनुभव गम्य नहीं। मन बुद्धि और वाणी से उसका वर्णन भी नहीं हो सकता क्योंकि वह स्वयं ही इन सब की दृष्टा है और मन, बुद्धि व इन्द्रियाँ दृश्य हैं। केवल जिस पर वह महाशक्ति कृपा करती है वही कृतकृत्य हो जाता है। माँ जिसे अपनाती है वही उसे जान पाता है परन्तु ''जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई'' इसलिये फिर कौन किसका वर्णन करे। फिर भी माँ के यह लाल जगत हित के लिये इशारा अवश्य करते हैं। वेद भी संकेत मात्र करते हैं। उपनिषद् में महाशक्ति का वर्णन है –

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्,
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तं मनुभाति सर्वम्,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

उस माँ शक्ति के प्रकाश के आगे सूर्य, चन्द्र, तारे का प्रकाश, बिजली की चमक यह सब कुछ भी नहीं। यह सब उसी के प्रकाश से प्रकाशित हैं। समस्त सृष्टि के पीछे माँ का हाथ है। वही सृजन पालन संहार करती है उसकी गोद में ही हम सब हैं। गोद में रहते हुए भी क्यों भूल गया है रे मन उसको?

युगावतार भगवान श्री रामकृष्णदेव ने कहा है 'जैसे माँ काम करने के लिये बालक को खिलौना या मिठाई पकड़ाकर काम में लग जाती है और जब तक बच्चा खेलता रहे वह उसकी सुध ही नहीं लेती परन्तु जब बच्चे का मन भर जाता है खिलौना फेंक कर माँ के लिये रोता है व्याकुल होता है तो माँ तवे पर चढ़ी रोटी छोड़कर, जलते हुए दूध की परवाह न कर दौड़ी आती है और बालक को उठा लेती है। इसी प्रकार विषय रूपी खिलौने से खेलने वाले शिशु की माँ परवाह नहीं करती परन्तु जब प्राणी उस परम माँ के लिये रो उठता है तभी वह झट अपनी दिव्य गोद में उठा लेती है। रे मन, माँ को भूल मत, खिलौना फैंक, माँ का दुलार अवश्य पायेगा। दिव्य वस्तु की प्राप्ति के लिये जीवन मिला है। माँ तो पहले ही ध्यान रखती है परन्तु जब बालक अपने को समर्पण कर देता है तो विशेष ध्यान रखती है। इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, शरीर सब माँ के पदार्विन्द में समर्पण कर दे। वही तो ''प्रभु भंजन भव पीर'' हैं। जगद्गुरू श्री शंकराचार्य जी ने भी प्रश्नोतरी में कहा है – ''द्विशवेश पदाम्बुज दीर्घ नौका।'' प्रभु के चरणार्विन्द ही भवसागर से पार करने के लिये दीर्घ नाव है।'' समय को नष्ट न कर रे मन! यह सब कुछ अभी करना है इसी समय। यह पहला कार्य है जीवन में। यदि अभी ऐसा न हुआ तो शास्त्रानुसार हम निरर्थक ही सिद्ध हुए। हम केवल अपनी माता के यौवन रूपी उपवन को उजाड़ने के लिये ही पैदा हुए।

'मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारावयम्'

रे मन। जीवन ऐसे न बिता जैसे किसी निर्जन सूने घर में जलता हुआ दीपक का जीवन है।

'तारूण्यं गतमेव निष्फल महो शून्यालये दीपवत'

यही समय है फिर नहीं! फिर नहीं! फिर नहीं!

राजा भर्तृहरि ने कहा है –

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा,
चदन्ता वलि दृष्टिनश्यति वर्धते,
बधिरता वक्तं च ललायते।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धव जनो,
न भार्यां न शुश्रूषते, हा कष्टं पुरुषस्य।
जीर्णव्यसः पुत्रोऽपय मित्रायते।।

वृद्धावस्था में शरीर जर्जर हो जाता है, चाल अनियमित सी हो जाती है, दाँत गिर जाते हैं, नेत्रों का प्रकाश क्षीण हो जाता है, कर्ण शक्ति हीन हो जाते हैं, जिह्वा लड़खड़ाने लगती है, सम्बन्धी आदर नहीं करते, पत्नी सेवा नहीं करती, लड़के बात नहीं पूछते, ओह! कितना कष्ट होता है वृद्ध पुरुष को।

ऐसी अवस्था में क्या करेगा रे मन? इसलिये यौवन के रहते, जर्जरता की सन्ध्या होने से पूर्व अपना लक्ष्य प्राप्त कर ले क्योंकि उसके उपरान्त आयेगी काली रात्रि जिसमें कुछ न सूझेगा, कुछ न होगा, विकास का अन्त। फिर पुनर्विकास के लिये तुझे प्रतीक्षा करनी होगी ऊषा की। न जाने कितनी ऊषायें आयेंगी और फिर काली रातें ... ...।

उद्देश्य को न भूलना रे मन! नहीं तो महापतन होगा। इन्द्रिय-भोग जीवन का उद्देश्य न मानना यह पाशविकता है। सूअर कूकर आदि भोजन का जितना आनन्द लेते हैं मनुष्य नहीं ले सकते। इन्द्रिय सुख लालसा का कम होना ही सभ्यता का तथा मानव जीवन का चिन्ह है। बच्चों, स्त्री के लिये जो प्रेम है वह पाशविक है उसे प्रेम कहना अधर्म है। नि:स्वार्थ प्रेम ही प्रेम है वह केवल ईश्वर से हो सकता है। पति का प्रेम साधारण स्वार्थमय है। पति को मृत्यु के उपरान्त क्या कोई पत्नी चुम्बन करती है? कदापि नहीं अपितु उसको घर भी न रखेगी। इस संसार में मनुष्य सदा स्त्री, धन, मानमर्यादा के पीछे दौड़ रहा है पर कभी-कभी ऐसी ठोकर लगती है आँख खुल जाती हैं जिसे हम पकड़ते हैं वही वस्तु हाथ से निकलने लगती है।

नाशवान वस्तु से प्रेम नहीं कर सकती। नाशवान वस्तु प्रेम नहीं जानती। जब मनुष्य का प्रेम पात्र हर समय मृत्यु मुख में है और मनुष्य की आयु वृद्धि के साथ उसके मन में परिवर्तन हो रहा है। ऐसी अवस्था में संसार में शाश्वत प्रेम, स्थाई प्रेम करने की आशा कैसे हो सकती है? ईश्वर को छोड़कर अन्यत्र प्रेम कैसे ठहर सकता है। फिर इन भिन्न-भिन्न प्रेमों से क्या प्रयोजन? यह प्रेम सोपान मात्र है। पीछे एक ऐसी शक्ति है जो हमें सदा यथार्थ प्रेम की ओर प्रेरित कर रही है। उसी महाशक्ति की शरण लें। अपनी इच्छाओं को उसकी इच्छा में विलीन कर दें। अपना अस्तित्व उसके अस्तित्व में विसर्जन कर दे। उसका हो जा, उसे अपने रोम-रोम में अवतरण कर ले। माँ आयेगी, हाथ पखारेगी, बालक को छाती से लगा लेगी, कृत-कृत्य कर देगी, जीवन सफल होगा। माँ पुत्र का पुनर्मिलन होगा।

(पुरानी पत्रिका से उद्धृत)

क्या विकास का ऐसा क्रम सम्भव नहीं जिसमें बुराई तथा दुःख न हों? यह प्रश्न मुझे तो उस बच्चे के प्रश्न जैसा प्रतीत होता है जो कठिन प्रश्नों से दिक्क आकर कहे - क्या बिना मुश्किल सवाल हल किये बुद्धि का विकास नहीं हो सकता? हम इतना जानते हैं कि वर्तमान के लिए यह अनिवार्य है।

- स्वामी रामानन्द

ईश्वर, आत्मा और प्रकृति

सुश्री महादेवी वर्मा कहती हैं –

''सिर नीचा कर किसकी सत्ता,
सब करते स्वीकार यहाँ।
सदा मौन हो प्रवचन करते
जिसका, वह अस्तित्व कहाँ?''

जिसका अन्त ही नहीं, उसे पूरी तरह जान कौन सकता है; और जो हर स्थान पर है, हर वस्तु में है, उसके सम्बन्ध में कौन कह सकता है कि मैं उसे जानता नहीं? इसीलिये ईशोपनिषद् ने स्पष्ट शब्दों में कहा है – 'जो कहता है कि मैं उसे नहीं जानता हूँ, वह गलत कहता है, और जो कहता है कि मैं उसे जानता हूँ, वह भी गलत कहता है। दोनों ही नहीं जानते कि वे क्या कह रहे हैं। ईश्वर में रहते हुए भी जो कहता है कि मैं उसे नहीं जानता, वह उसी मछली की तरह है, जो सागर में तैर रही हो और कह रही हो कि मैं पानी को नहीं जानती – मैं प्यासी हूँ। इसी पर कबीर जी कहते हैं –

''पानी में मीन प्यासी, मुझे देखत आवे हाँसी''

और ईश्वर में रहते हुए भी जो दावा करता है कि वह ईश्वर को पूरी तरह जानता है, वह उस चिउंटी की तरह है, जो हिमालय की किसी गुफा में रेंगती हुई दावा करे कि मैं हिमालय को जानती हूँ। इसी विषय में कबीर जी कहते हैं –

''सात समन्द की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, हरि गुन लिखा न जाइ।।''

कहने का अभिप्राय यह है कि सात समुद्रों की स्याही बनाकर जंगल के सारे वृक्षों को कलमें बनाकर, इस पृथ्वी को कागज़ बनाकर यदि लिखा जाये तो भी श्रीहरि के गुणों का पूरा बखान करना अति कठिन है।

यह सब कुछ जो दीखता है या सूझता है, समझ में या अनुभव में आता है – मैं, आप, दूसरे लोग, पशु, पक्षी, हरे खेत, झरती हुई नदियाँ, ऊँचे-ऊँचे पहाड़, चन्द्रमा, आकाश, ग्रह, सूर्य और उनसे भी परे सब कुछ का एक मात्र आधार है वह चेतन सत्ता जो तीन रूपों में प्रगट है – ईश्वर, आत्मा और प्रकृति।

प्रकृति का गुण यह है कि वह है, जैसे गीली मिट्टी का ढेर है। हम उसे किसी भी रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। सोना भी वही है, लोहा और आग भी वही है। उसका अपना कोई रूप नहीं, अपना कोई नाम नहीं। उसके लिये न सुख है न दुःख। आत्मा के दो गुण हैं। पहला यह कि वह है, जैसे प्रकृति है। दूसरा यह कि वह जीवित है – सुख और दुःख दोनों को समझता है, इच्छा भी करता है, आशा भी। ईश्वर में तीन गुण हैं – पहला यह कि वह है, जैसे प्रकृति है, दूसरा यह कि वह जीवित है, ज्ञानवान है, शक्तिमान् है, जैसे आत्मा और तीसरा यह कि वह आनन्द से भरपूर है – स्वयं ही आनन्द रूप है। दूसरे शब्दों में –

प्रकृति 'सत्' है।
आत्मा 'सत' और 'चित' है।
ईश्वर 'सत' 'चित' और 'आनन्द' है।

परन्तु इतनी बात सुन लेने पर भी हमारे सन्देह बने रहते हैं। कुछ लोग प्रकृति को ही सब कुछ मानते हैं। कुछों के मत में आत्मा परमात्मा का एक अंश है, जो प्रकृति के चक्कर में फंस गया है, और कुछ लोगों के मतानुसार 'आत्मा' सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् है। वास्तव में आत्मा न तो प्रकृति है, न ईश्वर है। यदि वह ईश्वर होता तो उसे कभी दुःख का अनुभव न होता क्योंकि ईश्वर तो आनन्द

स्वरूप है। यदि वह प्रकृति 'जड़' होता तो उसे सुख और दु:ख का अनुभव ही न होता।

अब यह प्रश्न शेष रहता है कि 'ईश्वर क्या है?' उपनिषद् और वेद में नचिकेता की कहानी आती है। नचिकेता के पिता ने उसे यम के पास भेजा। यम के घर पहुँच कर वह तीन दिन भूखा प्यासा बैठा रहा। यम बाहर से वापिस आये तो भूखे अतिथि को अपने द्वार पर पाकर अफसोस किया; प्रायश्चित करने के लिये वे बोले – 'मैं तुम्हें तीन वर देता हूँ, जो मांगोगे वही मिलेगा'। नचिकेता ने पहले वरदान में अपने पिता की प्रसन्नता मांगी। दूसरे में अपनी माता की दीर्घायु के लिये कामना की और तीसरे में यह जिज्ञासा की कि भगवान का स्वरूप क्या है? यम ने कहा, 'तूने अपने लिये कुछ नहीं मांगा। मैं तुझे सब कुछ दे सकता हूँ – सारी पृथ्वी का राज्य, अनन्त धन, अक्षय यौवन, सुन्दरता, प्रभुता आदि'। नचिकेता ने कहा, 'यह सब कुछ मुझे नहीं चाहिये, क्योंकि यह सब कुछ नष्ट होगा। मुझे अविनाशी ब्रह्मज्ञान चाहिये।' यम के बार-बार जोर देने पर भी जब नचिकेता ने अपना हठ नहीं छोड़ा, तब यम ने समझाना आरम्भ किया कि प्रकृति क्या है, किसकी शक्ति से वह रूप बदलती है। आत्मा क्या है, किसकी शक्ति से वह शक्तिवान बनता है। सब कुछ सुनने के पश्चात् नचिकेता ने कहा, 'लेकिन मैं तो ईश्वर का रूप जानना चाहता हूँ, जिसकी शक्ति से यह सब कुछ प्रकाशित है'। यम ने उसके हठ को देख चिल्ला कर कहा, 'चुप रह बच्चे! यदि इससे आगे पूछेगा तो तेरा सिर कट जायेगा।' यह केवल एक कहानी है, किन्तु इसका तात्पर्य यह है कि आत्मा के लिये, चाहे वह मनुष्य के रूप में हो या किसी और रूप में – परमात्मा को उसके पूरे रूप में देखना असम्भव है। परमात्मा अपार है और आत्मा संकुचित है।

ईश्वर का पूरा रूप न कभी वर्णित किया गया है और न किया जा सकेगा। आत्मा उसे केवल अनुभव कर सकता है। वह भी उस समय जब वह अपनी शुद्ध अवस्था में हो। **'निर्मल मन जन सो मोहि पावा'** (तुलसी)। तभी भक्त और योगी अपने अनुभव के अनुसार कहते हैं –

ईश्वर अनन्त है, असीम है, सर्वशक्तिमान है, आनन्द का भण्डार है, न्यायकारी है, कल्याणकर्ता है, शंकर है, आदि।

माया दीन दयाल की, दीखत है चहुँ ओर।
मेरा जग में कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोर।।

– उर्मिला सहगल

(पुरानी पत्रिका से उद्धृत)

❖ ❖ ❖

1. **यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे मरते ही संसार तुमको न भूल जाये तो या तो पढ़ने योग्य रचनाओं की सृष्टि करो या वर्णन करने योग्य कर्म करो। – फ्रेंकलिन**
2. **एक अच्छी माता सौ शिक्षकों के बराबर है। – जार्ज हर्बर्ट**
3. **विनाश के बिना विकास कहाँ। – चितरंजन दास**
4. **मेहनत वह सुनहरी कुञ्जी है जो सौभाग्य के बन्द द्वार खोल देती है। – वाल्टेयर**

श्री गुरुदेव सत्संग-सुधा

हमारे महाराज बताते हैं कि श्रद्धा का बल क्षीण होता है अनन्यता के अभाव से। आत्मा की शक्ति जितनी भी धाराओं में बह जायेगी उतनी ही वह पतली पड़ जायेगी। अत: श्रद्धा को सब ओर से समेट कर मातृ चरणों में प्रेरित करना होगा। जो अनेक देवी देवताओं की उपासना करता है, जो संसार के व्यक्तियों और भोगों को माँ के बराबर समझता है वह इस अनन्यता से कोसों दूर है।

अन्तर योग के रहस्य का विवेचन जितने सुन्दर और रोचक ढंग से उन्होंने किया है ''अध्यात्म साधन'' नामक पुस्तक में, शायद ही किसी ने ऐसा किया होगा। सुन्दर भाव सुन्दर शब्दों में अति सुन्दरता से पिरोये हुए हैं। पढ़ते-पढ़ते मनुष्य कुछ क्षण के लिये एक दम उस अन्त:स्तल की नीरव गुफा में प्रवेश पा जाता है और शान्ति का अनुभव करने लगता है।

जीवन में अनेक क्षण ऐसे आते हैं जिनमें मनुष्य परेशान हो जाता है अधीर हो उठता है, भागना चाहता है संसार के दु:खों से। उसके लिये महाराज लिखते हैं – स्वीकार करो सभी कुछ उसी से, उसी के आगे उड़ेल दो सब कुछ। सभी थाहों को प्रभु चरणों में रख दो, फिर चैन होगी। इसी प्रकार उनकी विचारधारा भी अपने ही ढंग की है जो कि पुरानी मर्यादित विचारधाराओं से मेल नहीं खाती। उसकी नवीनता में भी इतना आकर्षण है कि कट्टर विचारों के मनुष्य का भी सिर झुक जाता है उसकी सच्चाई के आगे।

प्राचीन विचार धारा के अनुसार कामिनी, काञ्चन बाँधते हैं इनसे दूर भागो, लेकिन स्वामी जी की विचार धारा के अनुसार काम और ऐश्वर्य बाँधते हैं, इनसे दूर भागने से बन्धन होता है, इनको प्रभु से स्वीकार करो, ऐसा करने से कामिनी काम के संस्कार को दग्ध करने वाली माँ महाशक्ति का रूप बन जायेगी, कञ्चन को प्रभु से स्वीकार करने से लोभ को क्षीण करने का यह साधन बन जायेगा, प्रभु की सेवा का साधन बन जायेगा।

इसी प्रकार पुरानी विचार धारा के अनुसार सांसारिक व्यापार करना प्रवृत्ति है और गृह त्याग, काम-काज का संवरण निवृत्ति है, पर महाराज के अनुसार जब तक भीतर ऊँची चेतना जाग्रत नहीं होती तब तक नव संस्कार का निर्माण होता है, तब तक निवृत्ति नहीं, प्रवृत्ति है, भले ही कोई संन्यासी क्यों न हो जाये। जब भीतर ऊँची चेतना जागृत हो जाती है, शक्ति का अवतरण होने लगता है, बुद्धि में वह उतरने लगता है, तब नये संस्कारों का निर्माण नहीं होता। भोग के द्वारा पुरातन संस्कार क्षीण होते हैं, तब व्यक्ति की गृहस्थ में भी प्रवृत्ति नहीं होती।

यह विचारधारा कहती है – जहाँ डर है वहाँ से भागो। यह कहते हैं, डर को निर्मूल कर दो, उस संस्कार को क्षीण कर दो। ऊँची चेतना की जागृति से उस विचारधारा में त्याग किसका? उसे तो सब कुछ स्वीकार करना है उस माँ से, जो कोई उसके रास्ते में जाता है, माँ उसे सभी कुछ के ऊपर कर देती हैं। वह बन्धन से भागता नहीं, इसीलिये बन्धन से आवाध्य हो जाता है। ऐसे साधु का परिवार गृहस्थियों से बड़ा होता है।

इस रास्ते का साधु गेरुवा वस्त्र पहिनने से साधु नहीं होता, भीतर उसके रंग में रंगा जा कर उसका हो कर, प्रेम तथा सेवा की भट्टी में जलकर बनता है। उस विचारधारा के अनुसार साधु बाह्य तप, त्याग, वैराग्य तथा संयम की मूर्ति होना चाहिये।

किन्तु यहाँ उसका जीवन मोक्ष के लिये न होकर प्रभु के लिये हो जाये। समता तथा सौम्यता उसका स्वभाव होना चाहिये, प्रभु के हाथों में वह यन्त्र हो जाये, पीड़ितों के लिये वह मरहम हो जाये, दुखियों के आँसू पौंछने वाला वह सभी का सगा हो, सभी का पुत्र हो, सभी का सेवक हो, सभी में प्रभु की उपासना कर सके।

इसी प्रकार मन को वश में करने के लिये, जहाँ पुरानी मर्यादाओं के अनुसार संयम, तप, आदि का आश्रय लिया जाता है, स्वामी जी के विचारों के अनुसार अपना प्रयत्न मन को काबू करने में मत लगाइये। यदि कोई सोचे कि मन को वश में करने से ही प्रभु पथ पर चला जायेगा तो कभी भगवान का रास्ता न मिल सकेगा। मन से लड़ाई लड़ना गलत तरीका है।

एकाग्रता स्वयमेव आ जाती है साधना करने से।

इसी प्रकार वह अपनी पुस्तक 'जीवन रहस्य' में लिखते हैं कि काम की शक्ति तिरस्कार के योग्य नहीं, इससे डरने की जरूरत नहीं, इसका तिरस्कार अपना तिरस्कार है, इससे डरना अपने लिये गड्ढा खोदना है, यह प्रभु की रचनात्मक शक्ति है, विकास के क्रम में इसका होना स्वाभाविक है। इसका शोधन होना चाहिये ऊँची चेतना की जागृति से और इसका पूर्णरूपेण रूपान्तर हो जाना चाहिये।

उनकी शैली विकास की शैली है। यद्यपि यह शैली परम्परागत प्राचीनता को लिये हुए चलती है, पर वह अपने में एक सम्पूर्ण THEORY है। मिट्टी से पत्थर, पत्थर से वनस्पति और वनस्पति से पशु पक्षी और फिर मानवता, इस प्रकार क्रम से चेतना विकास को प्राप्त दुर्बलताओं एवं विकारों को दिव्य गुणों में परिवर्तित करती हुई चलती है और इस प्रकार मानुषी से अति मानुषी कोटि अर्थात दिव्यता को प्राप्त करती है। यह उनका विकासवाद है जो उनके सिद्धान्तों के अनुसार स्वयमेव होता चला जाता है।

दु:ख, सुख, पाप, पुण्य, शुभ, अशुभ, जन्म, मरण, सबका उनके विकास में स्थान है वह किसी दु:ख से घबराते नहीं, सुख में आसक्त नहीं होते, पाप से डरते नहीं, पुण्य में लिप्त नहीं होते, शुभ से प्यार नहीं, अशुभ से भागते नहीं, जन्म को वह मृत्यु के मन्दिर तक ले जाने वाली सड़क कहते हैं और मृत्यु को भावी विकास का कारण। इनकी पुस्तक 'अध्यात्म विकास' इन तथ्यों का अति सुन्दर विवेचन करती है। एक बार सत्य का सुन्दर दर्शन होता है इनके उपदेशों में, परन्तु यह सब उस विकास कारिणी महाशक्ति माँ के ही सम्पर्क में आने से अनुभव में आता है।

यहाँ हम गुरुदेव के वाक्यों को दोहराते हैं –

यह जीव तो प्रकृति में यज्ञ के द्वारा छिपा हुआ पुरुषोत्तम ही है। जीव विकास के पथ का पथिक है, उसे पुरुषोत्तम भाव को प्रकृति में पूर्णरूपेण अभिव्यक्त करना है।

जिस हृदय में सेवा का स्रोत बह रहा हो – स्वाधीन सेवा का, उसमें वासनाओं के लिये कहाँ स्थान?

सभी कुछ प्रभु पर छोड़ना होगा, उसकी बाहें बड़ी लम्बी हैं। जहाँ आदमी का दिमाग नहीं जाता वहाँ वह पहुँच जाती हैं।

जो साकार है वही निराकार है, और जो निराकार है वही साकार है। सत्ता तो एक ही है, निराकार को साकार में सीमित हम कैसे समझ सकते हैं। वह तो उससे बहुत परे भी है। और वही तो मुरली मनोहर भी है। अपना नाता तो उससे जोड़ना है जो सभी साकारों का स्रोत है, सभी शक्ति का आदि है। प्रेम

का आदि है वही जो अनन्त है। नाता जोड़ें किसी भी आधार को लेकर, किसी भी रूप अथवा गुण अथवा नाम के आधार को लेकर। तुलसीदास जी तो राम को सीमित ही न समझते थे, वह तो बार-बार भगवान की भगवत्ता का स्मरण करते हैं – **'जग पेखन तुम देखन हारे'** – वही अनन्त इस रूप में प्रकट हुआ है। वही नाना वेषों को धारण करता है।

प्रभु के आगे माथा झुकाना है, झुकाओ फिर जैसे वह ले चले उसी रास्ते पर खुशी से चलो। जो अनुभव वह कराये वह स्वीकार करो, वह दर्द देगा तो सहन की ताकत भी देगा। वह साथी बना साथ रहेगा। वह प्यार से भर देगा पर ठीक समय पर, वह देने में कंजूस नहीं, पर वह पगला नहीं। दूसरे का हित, उसका विकास ही सबसे बड़ी बात उसके सामने रहती है। उसकी लीला विचित्र है, वह खूब खेलता है, कभी रास्ता खोलता है और कभी बन्द करता है। वह सभी रास्तों से व्यक्ति को जाग्रत करता हुआ ले जाता है।

दु:ख क्या है? पापों का फल तो है, पर इतना ही नहीं वह हमारे विकास की मांग भी है।

जितनी बड़ी समस्या है, उतना ही मानो हमें ऊपर उठाने के लिये चुनौती है, उतना ही बड़ा आगे बढ़ने का अवसर हमारे सामने आ उपस्थित हुआ है। जीवन की विभिन्नता में, पारस्परिक संघर्ष में और अन्तर्द्वन्द्व में भी कोई महान प्रयोजन छिपा है।

यह संसार उस मंगलमय योगेश्वर की शिव स्थली है। इससे घृणा करना पाप है। मृत्यु इस में विराम का चिन्ह है, जो नूतन प्रवेश का, नवीन जीवन का आवाहन मात्र है। इस संसार का जो मंगलमय प्रयोजन है, उसे पहिचानना चाहिये।

अशुभ से उदित होते हुए शुभ को पहिचानना और उससे प्रोत्साहित होना – यह तरीका है आगे चलने और चलाने का।

वास्तव में संसार दु:ख रूप नहीं है, हमारी मन:स्थिति ने ही इसे हमारे लिये दु:ख रूप बना दिया है। हम एक विशेष प्रकार से प्रतिक्रिया करते हैं संसार के प्रति और उसका फल होता है दु:ख। वही संसार साधक के लिये आनन्दमय होता है और उसका दृष्टि बिन्दु बतलाता है कि पूर्णत्व को प्राप्त व्यक्ति तो इसी संसार को सच्चिदानन्द मय देखता है। प्रत्येक क्रिया में, प्रत्येक विकार और प्रत्येक अणु में उसे तो वही अनुभव में आता है।

दु:ख आन्तरिक प्रतीति है – भीतर से होने वाली प्रतिक्रिया है। व्यक्ति के साथ यह बदलती रहती है। तमस से रजोगुण में प्रवेश दु:ख की प्रखर किरणों के पड़ने ही से होता है और फिर रजोगुण से यही दु:ख व्यक्ति को सत्व की ओर प्रेरित करता है। आत्म-विश्वासी विफलताओं को ही सीढ़ियाँ बनाकर चलता चला जायेगा, विफलतायें पथ-प्रदर्शक होंगी।

धनात्मक उद्देश्य को लेकर चलना ही श्रेयस्कर है। भगवान से पूर्ण ऐक्य प्राप्त करना और सच्चिदानन्द की पूर्ण अभिव्यक्ति, दिव्य चेतन का अपने में पूर्णरूपेण अवतरण मंगलमय उद्देश्य है। मोक्ष एक ऋणात्मक आदर्श है जो व्यक्ति को संकीर्ण बनाता है। निराकरण के द्वारा तो इस लोक और परलोक के बीच में अनन्त खाई खुदी दीखने लगती है और इस लोक की अवहेलना कर हम परलोक में प्रासाद निर्माण करने के इच्छुक हो जाते हैं। क्रियाहीनता की ओर प्रवृत्ति उस आदर्श वालों के लिये स्वाभाविक ही है।

यहाँ सांसारिक क्रियाकलाप भी आध्यात्मिक साधन है, अनिवार्य आध्यात्मिक साधन है। इसके बिना साधन की निष्पत्ति नहीं हो सकती। साधन सारे जीवन में व्याप्त होने वाली वस्तु है। जब तक व्यक्ति केवलमात्र प्रात: सायं किये गये को ही पूजा-पाठ मानता है,

और दिन में किये गये को आध्यात्मिक साधन नहीं समझता, उसका दृष्टिकोण संकीर्ण है और मनोवृत्ति समुचित नहीं। बिना क्रिया किये क्रिया में पूर्णत्व कैसे प्राप्त हो सकता है? साधन की प्रत्येक अनुभूति, हर एक प्रतीति उसे आगे ले जाने वाली होती है। प्यार कर सकना एक सौभाग्य है। सेवा कर सकना प्यार से – यह इससे भी बड़ा सौभाग्य है।

प्रभु मिलन के लिये तो तन भी शुद्ध रहना चाहिये और मन भी, तो क्यों गन्दा करूँ विष (नशे) के सेवन द्वारा अपने देव मन्दिर को।

ऐसे अनेक सुन्दर-सुन्दर उपदेशों से उनका साहित्य भरा पड़ा है उनके मुख का प्रत्येक शब्द ही उपदेश के रूप में निकलता था। उनका लगाया हुआ उपवन 'साधना परिवार' पूरी तरह से पनपने भी न पाया था कि वह प्यारा माली चलता बना। लेकिन अब भी उनकी सूक्ष्म देखरेख में उनका उपवन फल-फूल रहा है, निराश जनता को यहाँ सच्ची शान्ति मिलती है। स्वामी जी ने अपने छोटे-से जीवनकाल में अनेक ग्रन्थों की रचना की – हिन्दी में भी और अंग्रेजी में भी। (इनकी सूची पत्रिका में दी गई है।)

साधना सत्संग – महाराज अपने जीवन काल में, एकान्त स्थान पर शहरों से दूर एक 'सत्संग' साधना शिविर लगाया करते थे पाँच या छः दिन के लिये, जिसमें अखण्ड जाप, भजन, कीर्तन, उपदेश आदि समय पर होते थे और अब भी होते हैं और 'साधना शिविर' नामक पुस्तिका में शिविर के नियम, अनुशासन तथा शिविर के लिये आवश्यक सामग्री आदि के विषय में परिचय दिया गया है।

ये शिविर अब भी समयानुसार हरिद्वार, दिगोली, कानपुर, बीसलपुर, अहमदाबाद आदि स्थानों पर इनकी सूक्ष्म अध्यक्षता में होते हैं जो कि अत्यन्त लाभप्रद हैं।

– **श्रीमती सन्तोष नांगिया**
(पुरानी पत्रिका से उद्धृत)

दानदाताओं की सूची

नकद दान राशि के अलावा निम्नलिखित दानदाताओं से साधना धाम के लिये विभिन्न वस्तुओं और धाम में की गई सेवाओं के रूप में दान प्राप्त हुआ है :-

1. श्री जितेंद्र चौहान, मेरठ	1 वैक्यूम क्लीनर
2. श्री नारायण सेवक वाजपेयी	10 सीलिंग फैन
3. श्री के.सी. अग्रवाल, बरेली	5 सीलिंग फैन
4. श्री सुरेंद्र कुमार अग्रवाल, बीसलपुर	5 सीलिंग फैन
5. श्री आलोक मित्तल, बीसलपुर	1 बड़ा वाटर कूलर
6. श्री सी.बी. गुप्ता, दिल्ली	2 ओ.एफ.आर. हीटर
7. श्री हरपाल राजपूत, कनखल, हरिद्वार	जन्मदिन महोत्सव पर धाम में बिजली एवं फूलों की सजावट तथा प्रसाद का सारा खर्च वहन

स्वयं नाम की आराधना भी क्रान्तिकारी कदम है

भजनानन्दी जो सन्त हैं वो तो प्रेमरस पीते हैं और पिलाते हैं। परमात्म तत्व का चिन्तन करते प्रभु प्रेम में, भगवत रस ही उनके जीवन का आधार होता है शुरू के ठौर ठिकानों पर जब नाम के जाम पिलाये जाते हैं। लगता है आनन्द रस का झरना बह गया। वहाँ गुरु और शिष्य के भाव एक रूप हो जाते हैं। जो नाम रस का निरन्तर जाम पीते हैं धीरे-धीरे उनका जीवन संसार की असत्यता को जान जाता है वे नाम रस की गंगा में इतने बह जाते हैं भगवान का स्वरूप उस हृदय में बस जाता है अर्थात भगवान उनके हृदय सदन में विराजमान हो जाते हैं जो नाम रस पीते हैं औरों को पिलाते हैं। माँ के प्रेम पात्र बन जाते हैं माँ उनके भावों से मुखरित होने लगती है इस तरह सन्देश जगजननी का कह जाते हैं एक नशा हरिनाम भी है एक नशा जिससे अन्तर्मन के दाह मिट जाते हैं सन्तों के साथ में नाम का रसपान करो जन्म-जन्म की वेदना समाप्त हो जायेगी जो नाम रस पीते हैं उनका हलाहल भी अमृत में बदल जाता है संसार की विषम परिस्थितियाँ ही हैं हलाहल जो नाम के सहारे इसे पी जाता है उनकी विपरीत परिस्थितियाँ भी बदल जाती हैं। विषम परिस्थितियों की पतझड़ जाने के बाद वसन्त ऋतु भी आयेगी ऋतुओं का राजा है वसन्त, नाम गुरु प्रेम का वसन्त है नाम के प्रताप से पापों की पतझड़ मिटा दो गुरु प्रेम की वसन्त स्वयं उपस्थित हो जायेगी। गुरु करुणा का सागर है गुरु की करुणा अनन्त है स्वाती नक्षत्र बनकर जब गुरु कृपा बरसती है दुर्वासनाओं की प्यास मिटने लगती है स्वाती नक्षत्र की अपनी महिमा है ऐसी गुरु कृपा की अपनी महिमा गुरु कृपा किसके जीवन में कैसे-कैसे बरस जाये ये वाणी का विषय नहीं है सन्त माँ से यही याचना करते हैं माँ अपनी प्रेमाभक्ति का सम्बल दे दो जिससे आपका ये प्रेम मुझे मेरी मंजिल तक पहुँचा देगा जो निष्काम आराधना करते हैं वे नाम के सहारे चलते-चलते प्रेम पथ में प्रवेश कर जाते हैं। प्रेम पथ में प्रवेश करते ही जीवन के नज़ारे बदलने लगते हैं गुरु के प्रेम प्रभाव से इसका दिग्दर्शन किया जा सकता है जहाँ भेद भ्रम का नाश हो जाता है नाम का द्वार ही दिव्यता से भरा हुआ है वहाँ गुरु प्रेम की आभा बिखर जाती है नाम जब अपने प्रकाश में किसी को खींचता है उस स्थिति का वर्णन करना असम्भव है नाम तब भक्त और भगवान को एक कर देता है कभी-कभी मैं विचार करती हूँ नाम अनेक दिव्य शक्तियों का भण्डार तो है ही मैं तो इस पथ पर जितने कदम बढाती हूँ मुझे एक अलग चमत्कार दिखाई देता है नाम की आराधना करना भी एक क्रान्तिकारी कदम है नाम की शक्ति मन, बुद्धि, प्राणों में एक नई क्रान्ति कर देती है नाम की शक्ति अनन्त है।

– मीरा गुप्ता

IN SEARCH OF GOD

Is there God? If so where can you find him? Such questions have plagued the humankind for ages. All search for finding answers has proved futile. A lot of people have turned atheist since they could not find any proof of existence of God. Endless debate has raged on with rationalists pitted against faithful.

For centuries various sages, philosophers, gurus have been engaged in the enquiry, *sadhna, tapa, yoga;* and all to find the ultimate truth.

Yet nobody has been able to settle the debate about existence of God; Rahim described the conundrum by observing:

रहिमन बात अगम्य की कहनि सुनन की नाहिं।
जो जानत सो कहत नहिं कहत ते जानत नाहिं॥

Rahim says these secrets are of the beyond and not something you speak of. One who says he knows, take it for granted, knows he not whilst one who knows, does not say it. Perhaps that is the reason everybody has spoken in riddles. Yet some of the epics, philosophers and saints have left broad hints about the existence of God, which we ordinary mortals are neither capable of understanding or are prepared to make further enquiries.

Early Upanishads did declare clearly about the existence of God, but we have by and large chosen to gloss over it. The heavy nature of texts require a more calm and tranquil mind to comprehend.

Swami Ramanand Ji left no doubt when he said, "I worship the GOD that is within me and within all."

To answer the question more specifically Swami Ramanand Ji says, "What am I? In reality what you are or what the ultimate truth is which you will realise when you are established in it. All attempts at description must of necessity be incomplete because of the inherent limitation of thought.

W.B. Yeats wrote in 1937 that the Upanishads are a doctrine of wisdom. (A record of wise teachings heard by sitting at the feet of masters is called Upanishad(s). In a joint endeavour with Shree Purohit Swami, Yeats attempted to prepare a gist of principal Upanishads. I quote from the gist of Isha Upanishad,

"The self is one. Unmoving, it moves further than the mind. The senses lag but self runs ahead. Unmoving it outruns pursuit. Out of the self comes the breath that is the life of all the things.

Self is within all and outside all.

The self is everywhere, without a body, without a shape, whole, pure, wise, all knowing far shining, self-depending, and all transcending."

Isha Upanishad in the very first verse itself explains the nature of self. Different philosophers have written commentaries on it. But alas, the true meaning of the saying in the Upanishad has been imbibed and practised by few only. Repetitions like a parrot have neither bestowed any wisdom nor have taken any closer to the truth.

A deeper enquiry, however does point out that various Saints, Rishis and intellectuals have tried to answer the above question, but their findings have largely been ignored by the Society. Kabir had also declared that God cannot be found in places of worship, because

he is inside you. Let us examine some of the beliefs of the society and the proclamations contained in our ancient books.

We all have heard people say.

'खुली आँख से देखने से प्रभु मिलता है'

We all wonder then, why people close their eyes and meditate in search of God, if the above is true. There possibly can be two interpretations. One could be that God is in everybody, hence whenever you look at another being *(Jeeva)* you see nothing but only God. Ramana Maharishi was the first one to question who am I? He had said that if I am not the body then who am I? That enquiry led him to know that an Individual is not different from GOD as he is only a part of the GOD. Therefore, in meditation, he never closed his eyes. The other interpretation could be you see God only when you are fully awake. Upanishads also exhort us to be the one who is awake when everybody else is sleeping.

'य ऐष सुप्तेषु जागृति!'

What are the characteristics of a person who is truly awake? One can argue that such a person sees and interprets the happenings in this world as the play of *maya* and is not affected by developments since he knows body is different from the real you. Thus such a person remains a witness, unmoved by events, because he realises everything is transitory.

One can safely conclude that "open eyes" here means the one who can see the existence for what it truly is and sees everybody playing their assigned roles in the celestial drama.

I also hear people saying

'जब भी गर्दन झुकायी देख ली तस्वीरे यार'

Roughly translated it means that whenever you bend your neck, you can see God within you. This can easily be interpreted to mean that whenever you let go of your ego, you can see God. This looks to be simple but perhaps is the most difficult of the ways to find God. Annihilation of ego requires us to put a massive effort to let go of our separate identity and idea of existence. It is difficult to let go of the idea of me & mine. Perhaps when one manages to do that no dispute remains with anybody and one gets prepared to accept all persons and events, good or bad. It is our ego that stops us from recognising the real us. This requires *Sadhna* of a lifetime, Kabir also hinted about this being the only way to find God, when he said:

प्रेमगली अति सांकरी, जामें दो न समाय,
जब मैं था तब हरि नहिं, अब हरि है मैं नाय!

Those who go in search of God, have to become totally unmindful of their existence because so long as the ego is present, one cannot see God.

This can also be interpreted to mean when you see God in everybody then only can you see Him in yourself also. When the duality does not exist, then only the vision of God can be seen.

Our ego plays a very strong role and Rahim did observe that even when people are told the ultimate truth, they do not accept it. Rahim had found that God is within us and people are not ready to believe even when told. He had observed

हैरत हैरत री सखी, हैरनहार हैरान!
का अचरज कासे कहूँ, बिन्दु भी सिन्धु समान!!

The observer is himself surprised by the discovery so profound that he cannot think

of sharing with anybody because nobody will believe him. He had found out that a droplet is equal to the ocean in all its characteristics. In other words there is no difference in man and God. Looks to be incredulous. That's why he had also observed that it is better to keep this ultimate truth as secret.

A popular *bhajan* also captures this truth and we all have sung it many times yet hardly anybody has accepted its true meaning. It goes like this

मुझमें राम तुझमें राम, सबमें राम समाया,
सबसे करले प्यार जगत में कोई नहीं है पराया !

Man is ignoring the ultimate reality and is going around in circles.

No wonder Sant Kabir was impelled to coin the following immortal verse:

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूँढे बन माहिं,
ज्यों घट घट में राम हैं, दुनिया देखे नाहिं !

Musk is in the navel of the deer, maddened by its intoxicating perfume, the deer runs all over the jungle in search of it, not knowing that the source is in its own stomach. Same is true for people, who do not see within but keep looking for God outside. Kabir had also composed a *bhajan* spelling out in detail about the presence of God and the characteristics of NIRAKAR, who takes the shape of the being or the thing in which it is in present. The *bhajan* will be relevant to be reproduced here:

घट घट में पंछी बोलता,
आप ही डण्डी आप तराजू,
आप ही बैठा तोलता,
आप ही माली आप बगीचा,
आप ही कलियाँ तोड़ता,
सब में सब बन, आप समाया,
जड़ चेतन में डोलता !

Sant Kabir says God is present in everything and everybody. HE is the Gardener; the Flowers and HE is the One who plucks the Flowers. HE is the weighing mechanism and the one who weighs. HE becomes that in which HE goes.

In essence, God is in every being, in everything and therefore it is futile to search for it outside of you.

Many have tried to capitalise on the Brahm vakya, *'Aham Brahmasmi.'* Those who have the courage could only proclaim thus. The problem arises when they do not apply it to everybody. If God is within you, which is correct, so is HE in everybody. In Bhagvad Gita also this message is summed up thus. 'When you see no difference in Victory or Defeat, Gold or Dust and see me in everybody, you will also become like me.'

Ashtavakra says waves get formed in water, droplets – and foam also get formed, but they all are not different from water. They rise in water and settle in water only. Same way there is nothing different from God, everybody and everything is His waves, droplets, foam. They all rise in Him and settle down in Him.

Ashtavakra further says, I am not the body and this body is also not mine. I am pure consciousness. Patanjali has laid down the way one can unite with his true self, and that is by practising Chit *Vriti Nirodha*. He also prescribes the methods to achieve that state, which is achieved upon by deconditioning the mind.

यम	*Yama*	Don'ts
नियम	*Niyama*	Dos
संयम	*Sanyam*	Control or Reining in

आसन	*Aasan*	Postures
प्राणायाम	*Pranayam*	Breathing Techniques
प्रत्याहार	*Pratyahar*	Withdrawing from the senses
धारणा	*Dharna*	Fixed Idea
ध्यान	*Dhyan*	Meditation a State of abiding calm
समाधि	*Samadhhi*	Dissolution of Individual Awareness

Ashtavakra says you just learn to be a witness because you are neither the body, nor the mind. You are the ultimate consciousness. You do not have to do anything, just realise this truth and become a witness. Let the waves arise, settle, arise again you just watch. Do not get perturbed or act, just watch.

You are that pure consciousness. Hence once you realise this the rest stops affecting you. All this looks simple but it is really difficult. You do not need to keep making such a declaration again and again but really become neutral, not getting perturbed and remaining as a pure witness. Vivekanand had an encounter with a Pandit who was saying that we are not the body. Vivekananda picked up a stick and started beating the Pandit, who ran away to save his life. This wisdom will not become your reality only by talking about it. It will become your truth only when you start realising this every living moment.

One advantage of this realisation will be that you will be far more composed and compassionate.

Yoga should not stop at physical or breathing exercise but lead to Samadhi, where one dissolves the individual awareness. Once we are able to do so, that is control the thoughts arising in the mind and get control over our senses we can realise our true selves. Bhakti and *Gyan marg* both help us to reach that platform from where we can separate ourselves from the happenings and start becoming a witness. With a calm mind we can train ourselves to be pure Witness.

We all need to meditate and calm our minds to see and realise the truth. As Adishankara, Ashtavakra, Ramana Mahrishi have observed, that God is nothing but Satchitanand.

That is SAT, ever-present, unchanging, CHIT, consciousness and pure bliss (ANAND).

Adishankara was a proponent of Advaitism – Non-dualism.

In his Brahma Gyanawali Mala, he describes the self as:

"Unattached am I, ever free from attachment of any kind.

I am of the nature of Existence – Consciousness – Bliss, indestructible and ever unchanging.

I am beyond *Prakriti, (Maya)*. I am beyond ego *(Ahankara)* I am beyond all the different forms. I am self-luminous. I am beyond the three *gunas – Sattva, Rajas, Tamas.* I am the witness.

I am the inner controller, immutable, all pervading. I am devoid of parts. I am action less. I am the primordial, ancient, eternal one. I am the witness of all pairs of opposites. I am the Witness.

I am a mass of awareness and of consciousness. I am not a doer nor an experienced.

I am without any support and I am the support of all. I have no desires to be fulfilled.

I am free from the three kind of afflictions

– those in the body, those from other beings and those caused by higher powers.

I am different from the gross, subtle and causal bodies."

I am the witness of the three states of waking, dream and sleep.

Adishankara further says,

"There are only two things which are different from each other. They are the seer and the seen. Seer is Brahma and the seen is Maya. This is what Vedanta proclaims.

He who realises after repeated contemplation that he is a mere witness, he alone is liberated. He is the enlightened one, thus proclaims Vedanta.

The pot, wall etc. are nothing but clay. Likewise the universe is nothing but Brahman, this proclaims Vedanta.

Brahma is real, the universe cannot be categorised as real or unreal. The *Jiva* is Brahman itself and not different. Thus is proclaimed by Vedanta."

Adishankara ends this by proclaiming, "I am the auspicious one, the inner light and the outer light, the indwelling lights, higher than the highest, the light of the lights, self-luminous, the light is the self."

Shankaracharya is saying nothing different from Ashtavakra, One may consider the Bhagvad Gita as having expounded the same truth. This truth can only be realised by deep contemplation and the best result will come by learning to accept the events surrounding our lives as dispassionately as possible. Slowly-slowly we all can realise the true self as the supreme power itself. When one starts seeing himself in all creatures, no sorrow or reason for sorrow remains.

"I myself am He." (W.B. Yeats)

Man finds it difficult to believe. Sufis say that one who knows himself knows GOD. Therefore, we need to engage in an enquiry as to the real nature of the self.

Each religion, society, caste, creed have clothed the concept of God in images they can relate to. When a Hindu dreams of God, Christ does not come in his vision, neither does Mohammad, same is true for everybody. A coloured person's God cannot be white. These are all images. They are helpful in allowing us to concentrate, become calm and face the problems of life with fortitude. But they also limit us. We fail to realise the real God, the shapeless, watcher who is inside of us and is in everything and not just every entity only.

Ramakrishna Paramhansa was one person who had tried all the religions to find out the truth. He was an ardent devotee of Goddess mother. Once he met Sage Totapuri, from whom he learnt the art of going beyond the image. Ramakrishna says first you start with duality and then go for a merger and finally you come to a point where you do not remain, only HE remains. He is saying the same thing that Tulsi, Kabir, Shankaracharya, Rahim and Ashtavakra are saying.

There is God and He is everywhere and in everything. Realise this and become free.

Even when we accept this conclusion, we may still lapse into our habitual way of thinking and reacting. This is where one has to be careful. We have to watch our habitual thought patterns and continue to break our habitual way of thinking to realise our true nature.

– Dinesh Bahl

दानदाताओं की सूची

साधकगण अपने दान की राशि चैक द्वारा निम्नलिखित बैंक खातों में जमा करवा सकते हैं।

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
Bank of India, Haridwar
A/c No.: 721010110003147
I.F.S. Code: BKID0007210

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
Punjab National Bank, Haridwar
A/c No.: 00112010000220
I.F.S. Code: PUNB0001110

कृपा करके जमा करवाई हुई राशि का विवरण एवं अपना नाम और पता पत्र अथवा फोन द्वारा साधना धाम कार्यालय में अवश्य सूचित करें। जिससे आपको रसीद आसानी से प्राप्त हो जायेगी।

– **विष्णु अग्रवाल,** प्रबन्धक, साधना धाम, मोबाइल: 8273494285

1. श्री हरपाल सिंह राजपूत, हरिद्वार	5,100	24. गुप्तदान	11,000
2. श्री विष्णु कुमार अग्रवाल, बरेली	2,500	25. श्री राजेश गुप्ता, नई दिल्ली	11,000
3. श्री दक्ष खण्डेलवाल, नोएडा	2,100	26. श्री आर.के. मेहरोत्रा, नई दिल्ली	4,500
4. श्री सुनील कान्त अग्रवाल, पीलीभीत	5,100	27. मै. देशराज एंड संस, चण्डीगढ़	51,000
5. श्रीमती सुनीति देवी अग्रवाल, पीलीभीत	5,000	28. श्री राजेश टण्डन, लखनऊ	3,611
6. श्री शिवम अग्रवाल, फरीदाबाद	2,100	29. श्री अनिरुद्ध अग्निहोत्री, रुडकी	5,100
7. श्रीमती सुनीति देवी अग्रवाल, पीलीभीत	11,000	30. श्री सचिन अग्रवाल, फरीदाबाद	10,000
8. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	5,100	31. श्री अजय कुमार अग्रवाल, बरेली	11,000
9. श्री अभय सिंह, रायबरेली	5,100	32. श्रीमती मीरा	5,000
10. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	11,100	33. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	3,100
11. श्रीमती सुनीति देवी अग्रवाल, पीलीभीत	11,000	34. श्री सुनील कान्त अग्रवाल, पीलीभीत	5,100
12. सुश्री दिशा खण्डेलवाल, नोएडा	3,100	35. श्रीमती सुनीति देवी अग्रवाल, पीलीभीत	5,000
13. श्री विष्णु कुमार अग्रवाल, बरेली	2,100	36. श्री आकाश मेहरोत्रा, फरीदाबाद	2,100
14. श्री अजय कुमार तिवारी, कानपुर	2,100	37. श्रीमती उर्मिला मिश्रा, अहमदाबाद	5,100
15. श्रीमती ज्ञानवती शुक्ला, कानपुर	2,100	38. श्री विष्णु कुमार अग्रवाल, बरेली	2,100
16. श्री संजीव शुक्ला, जबलपुर	5,100	39. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	11,000
17. श्री एन.एस. वाजपेयी, धाम, हरिद्वार	5,100	40. श्री दुर्गेश गुप्ता, कानपुर	5,100
18. श्री एन.एस. वाजपेयी, धाम, हरिद्वार	2,100	41. श्री सीताराम सजवाण, देहरादून	5,000
19. श्रीमती सुनीति देवी अग्रवाल, पीलीभीत	12,000	42. श्री ज्योति कुमार अग्रवाल, बदायूँ	5,001
20. श्री मनोज गुप्ता-साधना गुप्ता, बीसलपुर	5,100	43. श्री ओम प्रकाश हाण्डा	5,000
21. श्रीमती शकुन्तला कठपालिया, बीसलपुर	50,000	44. गुप्तदान	1,00,000
22. श्री सुधीर-सविता कक्कड, होशियारपुर	2,100	45. श्री विनय अग्रवाल, फरीदाबाद	4,100
23. श्रीमती सतीश खोसला, दिल्ली	21,000	46. श्री विश्वमित्र हाण्डा, दिल्ली	3,100

शुभ समाचार

अत्यन्त हर्ष के साथ सूचित किया जाता है कि हमारे वरिष्ठ साधक श्री विश्वामित्र हाण्डा, निवासी दिल्ली की सुपुत्री श्रीमती शशी चिब्ब के सुपुत्र चि. अनन्य का विवाह दिनांक 27 नवम्बर, 2020 को दिल्ली में सम्पन्न हुआ। इस उपलक्ष्य में श्री विश्वामित्र हाण्डा ने रु. 3,100/- (तीन हजार एक सौ रुपये मात्र) की धनराशि साधना धाम के लिए गुरु चरणों में समर्पित की है। साधना परिवार की मंगल कामना है कि नवदम्पत्ति पर गुरु आशीष की वर्षा सदैव होती रहे तथा वैवाहिक जीवन हमेशा सुखमय व्यतीत हो।

❖ ❖ ❖

अत्यन्त हर्ष के साथ सूचित किया जाता है कि हमारे वरिष्ठ साधक व कार्यकारिणी सदस्य श्री सुधीर कान्त अग्रवाल, निवासी मेरठ ने अपने पौत्र चि. आदविक अग्रवाल के द्वितीय जन्मदिवस 25 नवम्बर 2020 के उपलक्ष्य में रु. 11,000/- (ग्यारह हजार रुपये मात्र) की धनराशि साधना धाम के लिए गुरु चरणों में समर्पित की है। साधना परिवार की मंगल कामना है कि चि. आदविक पर गुरु आशीष की वर्षा सदैव होती रहे।

❖ ❖ ❖

अत्यन्त हर्ष के साथ सूचित किया जाता है कि हमारे साधक श्री राजेश गुप्ता, निवासी नई दिल्ली ने अपने पुत्र चि. हिमालय के शुभ विवाह के उपलक्ष्य में रु. 11,000/- (ग्यारह हजार रुपये मात्र) की धनराशि साधना धाम के लिए गुरु चरणों में समर्पित की है। साधना परिवार की मंगल कामना है कि नवदम्पत्ति पर गुरु आशीष की वर्षा सदैव होती रहे तथा वैवाहिक जीवन हमेशा सुखमय व्यतीत हो।

शोक समाचार

अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित किया जाता है कि हमारे वरिष्ठ साधक श्री राधा रमण गुप्ता, निवासी कानपुर का स्वर्गवास दिनांक 16 जनवरी, 2021 को हो गया है। पूज्य गुरुदेव से विनम्र निवेदन है कि दिवंगत आत्मा को अपने श्री चरणों में स्थान दें तथा समस्त शोक सन्तप्त परिवार को इस दु:ख को सहने की शक्ति प्रदान करें। उनकी स्मृति में उनके सुपुत्र श्री दुर्गेश गुप्ता ने रु. 5,100/- (पांच हजार एक सौ रुपये मात्र) की धनराशि धाम के लिए गुरु चरणों में समर्पित की है।

❖ ❖ ❖

अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित किया जाता है कि हमारी साधिका श्रीमती कुमकुम विरमानी धर्मपत्नी स्वर्गीय कपिल विरमानी, निवासी फरीदाबाद का स्वर्गवास दिनांक 1 दिसम्बर, 2020 को हो गया है। पूज्य गुरुदेव से विनम्र निवेदन है कि दिवंगत आत्मा को अपने श्री चरणों में स्थान दें तथा समस्त शोक सन्तप्त परिवार को इस दु:ख को सहने की शक्ति प्रदान करें।

❖ ❖ ❖

अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित किया जाता है कि मर्मज्ञ राम कथा वाचक श्री मुक्तानन्द जी, निवासी अहमदाबाद, जिनकी राम कथा से हम सब साधकगण समय-समय पर लाभान्वित होते रहे हैं, का स्वर्गवास दिनांक 22 जनवरी, 2021 को अहमदाबाद में हो गया है। पूज्य गुरुदेव से विनम्र निवेदन है कि ऐसी पुण्य आत्मा को अपने श्री चरणों में स्थान दें तथा समस्त शोक सन्तप्त परिवार को धैर्य रखने की शक्ति प्रदान करें। उनकी स्मृति में उनकी पत्नी श्रीमती उर्मिला मिश्रा एवं सुपुत्र श्री अनिल मिश्रा ने रु. 5,100/- (पांच हजार एक सौ रुपये मात्र) की धनराशि गुरु चरणों में समर्पित की है।

जन्मदिवस शिविर-2020 की कार्यवाही

(दिनांक 14 से 16 दिसम्बर, 2020)

पूज्य गुरुदेव स्वामी रामानन्द जी के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में कार्यक्रम दिनांक 14 दिसम्बर, 2020 से लेकर दिनांक 16 दिसम्बर, 2020 तक चला।

इस शिविर में कोरोना महामारी के कारण प्रत्यक्ष उपस्थिति लगभग 50 साधक भाई-बहनों की रही किन्तु Zoom, YouTube तथा Facebook के माध्यम से भी अन्य शहरों में बैठे साधक भाई-बहनों ने अपनी उपस्थिति दर्ज़ करायी।

जन्मदिवस कार्यक्रम का शुभारम्भ दिनांक 14 दिसम्बर, 2020 को प्रात: 9 बजे राम चरित मानस के अखण्ड पाठ से आरम्भ हुआ। धाम के पण्डित योगेश जी ने जजमान श्री नारायण सेवक वाजपेयी जी को रामायण की पूजा एवं संकल्प कराकर अखण्ड पाठ प्रारम्भ कराया। इस बार यह पाठ अखण्ड रूप से पूरी रात्रि चला तथा इसी बीच सायं तथा 15 तारीख का प्रात: का जाप भी विधिवत हुआ।

अगले दिन अर्थात 15 दिसम्बर, 2020 को अखण्ड पाठ की पूर्ति हुई तथा प्रसाद वितरण हुआ।

इसके पश्चात् सायं 6:30 बजे से अगले दिन 16 दिसम्बर, 2020 की सुबह 6:30 बजे तक अखण्ड जाप चला जिसमें साधक बन्धुओं ने अपनी-अपनी ड्यूटी दी।

16 दिसम्बर, 2020 अर्थात गुरुदेव के जन्मदिन पर सुबह 9 बजे हवन का आयोजन किया गया जिसमें आदरणीय मधु गोयल एवं विष्णु गोयल जी तथा आदणीय रमन सेखड़ी जी द्वारा हवन आहुत किया गया। साथ में अन्य साधकों ने भी हवन में आहुतियाँ दीं। उपरोक्त कार्यक्रम का सीधा प्रसारण YouTube पर किया गया ताकि अन्य शहरों तथा देशों में उपस्थित साधक-साधिकायें भी दूर रहते हुए भी इन कार्यक्रमों में भाग ले सकें।

इस सुअवसर पर 11 ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें उपहार स्वरूप 1-1 शॉल भेंट कर दक्षिणा प्रदान की गयी।

इसके बाद अपरान्ह 1:45 बजे सभी साधकगण मन्दिर में एकत्रित हुए तथा पूज्य गुरुदेव का प्रकटोत्सव मिल्ककेक काटकर मनाया गया। साधिका बहनों ने **'भये प्रकट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी'** की पंक्तियाँ गाकर गुरुदेव का आवाहन किया। इसके पश्चात् सभी साधक भाई-बहनों ने गुरुदेव के चरणों में पुष्प अर्पित किये तथा फिर आरती की। इसके बाद सभी साधक भाई-बहनों ने अपने-अपने भजन गुरुदेव को अर्पित किये। इस अवसर पर मीडिया टीम ने अन्य शहरों में बैठे साधक-साधिकाओं को Zoom के माध्यम से इस कार्यक्रम में जोड़ा तथा उसका प्रसारण मन्दिर में टेलीवीजन रखकर दिखाया गया।

सायं जाप के पश्चात् संगीत सन्ध्या का आयोजन 8:30 बजे प्रारम्भ हुआ जिसमें विभिन्न शहरों तथा मन्दिर में उपस्थित साधक-साधिकाओं ने अपने-अपने भजन पूज्य गुरुदेव को अर्पित किये। इसमें कानपुर से अरुणा पाण्डेय, पूजा जयसवाल, कुसुम जी, गीता वर्मा हरिद्वार से, रमन जी, विष्णु गोयल जी, रमेश भइया, राखी अग्निहोत्री, रमा तिवारी, रामसिंह भईया, योगेश पण्डित जी, ऋषि जी, वाजपेयी जी, दिल्ली से कृष्णा भण्डारी (मामी जी), अविनाश ग्रोवर भईया, मुम्बई से सुशीला जयसवाल जी आदि ने अपने-अपने भजन प्रस्तुत किये। इसके साथ ही रात्रि 10:30 बजे भजन सन्ध्या के साथ कार्यक्रम की पूर्ति हुई। उपरोक्त कार्यक्रम का भी सीधा प्रसारण Zoom तथा YouTube के माध्यम से किया गया।

पूज्य गुरुदेव ने इन विषम परिस्थितियों में भी सूक्ष्म रूप में अध्यक्षता करते हुए न केवल इस शिविर का आयोजन कराया बल्कि उनकी उपस्थिति भी अद्वितीय रही। इसके साथ ही तीन दिवसीय पूज्य गुरूदेव जी के जन्मदिवस कार्यक्रम की पूर्ति हुई।

ऐसी महान विभूति को कोटि-कोटि नमन!

श्री स्वामी रामानन्द जी साधना साहित्य

1. आध्यात्मिक विकास	30.00 रु.	इन पुस्तकों में श्री स्वामी जी ने अपनी विकासवादी नवीनतम साधना पद्धति का विस्तार से वर्णन किया है।
2. आध्यात्मिक साधना (प्रथम खण्ड)	10.00 रु.	
3. आध्यात्मिक साधना (द्वितीय खण्ड)	30.00 रु.	
4. Evolutionary Outlook on Life	15.00 रु.	
5. Evolutionary Spiritualism	50.00 रु.	
6. जीवन-रहस्य तथा उत्पादिनी शक्ति	40.00 रु.	काम शक्ति तथा अध्यात्म विषय पर स्वामी जी द्वारा विशद् व्याख्या।
7. गीता विमर्श	60.00 रु.	श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम सात अध्यायों की स्वामी जी द्वारा विशद् व्याख्या।
8. व्यावहारिक साधना	2.00 रु.	पूज्य स्वामी जी द्वारा लिखित तीन लेखों – (1) साधकों के लिये (2) दम्पत्ति के लिये (3) माता-पिता के प्रति का संकलन।
9. कैलाश-दर्शन	30.00 रु.	पूज्य स्वामी जी ने कुछ साधकों के साथ कैलाश-पर्वत की यात्रा व परिक्रमा की थी। उस यात्रा का एवं उनकी आत्मानुभूति का विशद् वर्णन।
10. गीतोपनिषद	80.00 रु.	श्रीमद्भगवद्गीता के आठ से अठारह अध्याय तक स्वर्गीय श्री के.सी. नैयर जी द्वारा व्याख्या।
11. हमारी साधना	15.00 रु.	श्री पुरुषोत्तम भटनागर द्वारा सम्पादित
12. हमारी उपासना	6.00 रु.	
13. साधना और व्यवहार	5.00 रु.	
14. अशान्ति में	5.00 रु.	
15. मेरे विचार	5.00 रु.	
16. As I Understand	5.00 रु.	
17. My Pilgrimage to Kailsah	10.00 रु.	
18. Sex and Spirituality	25.00 रु.	जीवन-रहस्य
19. Our Worship	2.00 रु.	हमारी साधना
20. Our Spiritual Sadhana Part-I	15.00 रु.	आध्यात्मिक साधना (प्रथम खण्ड)
21. Our Spiritual Sadhana Part-II	15.00 रु.	आध्यात्मिक साधना (द्वितीय खण्ड)
		(प्रो. डा. लक्ष्मी सक्सेना द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित पुस्तकें)
22. स्वामी रामानन्द-एक आध्यात्मिक यात्रा	15.00 रु.	स्वस्पष्ट प्रो. डा. लक्ष्मी सक्सेना
23. पत्र-पीयूष	150.00 रु.	कु. शीला गौहरी द्वारा साधकों के नाम स्वामी जी के पत्रों का संकलन।
24. स्वामी रामानन्द-चरित सुधा	50.00 रु.	स्व. डा. कविराज नरेन्द्र कुमार एवम् वैद्य श्री सत्यदेव
25. स्वामी रामानन्द-वचनामृत	30.00 रु.	श्री जगदीश प्रसाद द्विवेदी द्वारा गुरुदेव की पुस्तकों से संकलन।
26. मेरी दक्षिण भारत-यात्रा	2.00 रु.	पूज्य सुमित्रा माँ जी द्वारा दक्षिण भारत यात्रा का रोचक वर्णन।
27. पत्तियाँ और फूल	40.00 रु.	भजन, पद, कीर्तन, आरती आदि का संकलन।
28. दैनिक आवाहन विधि		स्वामी जी की साधना प्रणाली पर आधारित। - श्रीमती महेश प्रकाश
29. Letters to Seekers	60.00 रु.	कु. शीला गौहरी एवं श्री विजय भण्डारी द्वारा साधकों के नाम स्वामी जी के अंग्रेजी पत्रों का संकलन।
30. आत्मा की ओर	25.00 रु.	
31. जीवन विकास - एक दृष्टि	20.00 रु.	Evolutionary Outlook on Life का हिन्दी अनुवाद
32. विकासात्मक अध्यात्म	65.00 रु.	Evolutionary Spiritualism का हिन्दी अनुवाद
33. गुरु के प्रति निष्ठा		तेजेन्द्र प्रताप सिंह
34. माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 1)	15.00 रु.	अनाम साधिका
35. माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 2)	50.00 रु.	
36. माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 3)	50.00 रु.	
37. माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 4)	60.00 रु.	
38. माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 5)	60.00 रु.	
39. श्रीराम भजन माला	40.00 रु.	श्री सूर्य प्रसाद शुक्ल 'राम सरन'
40. पत्र पीयूष सार	70.00 रु.	
41. माँ का भाव भरा प्रसाद गुरु का दिव्य प्रसाद	160.00 रु.	मीरा गुप्ता

बाल-साधना-शिविर-2021

शिविर स्थानः स्वामी रामानन्द साधना-धाम,
संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

दिनांक एवं समय :

कुछ वर्षों से ग्रीष्मावकाश में बाल-साधना शिविर का आयोजन सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इस शिविर का मुख्य उद्देश्य है बालकों का आध्यात्मिक, चारित्रिक एवं शारीरिक विकास करना। पूज्य गुरुदेव स्वामी रामानन्द जी की साधना पद्धति की सरल ढंग से जानकारी दी जायेगी एवं व्यावहारिक साधना के अन्तर्गत व्यावहारिक ज्ञान दिया जायेगा। शिविर में जाप का आवाहन, गीता पाठ, भजन एवं गोष्ठी का संचालन बालकों के द्वारा ही होगा अतः तैयारी करके आयें। प्रातः भ्रमण, खेल व योग के कार्यक्रम भी होंगे।

आवश्यक सामग्री : अपने पहनने के आवश्यक कपड़े, तौलिया, टूथपेस्ट व ब्रश, कंघा, साबुन, भ्रमण के लिए जूते, कापी, पैन एवं पेन्सिल।

बिस्तर एवं बर्तनों की व्यवस्था साधना-धाम की ओर से होगी।
कृपया अपने आने की सूचना 15 दिन पूर्व साधना-धाम में व्यवस्थापक महोदय को पत्र या फोन द्वारा अवश्य दें। (फोन नं. 01334-210215, 01334-240058, मोबाईलः 09219990126)

प्रतियोगितायें

बच्चों को तीन ग्रुपों में बाँटा जाएगा।

1. पहला ग्रुप 7 वर्ष से 10 वर्ष तक के बच्चे - शिक्षाप्रद कहानियाँ।
2. दूसरा ग्रुप 11 वर्ष से 14 वर्ष तक के बच्चे - सन्तों की कहानियाँ एवं संस्मरण।
3. तीसरा ग्रुप 15 वर्ष से 20 वर्ष के बालक व बालिकायें - दिये गये विषय पर सामूहिक चर्चा (Group Discussion)।

श्री गुरुदेव निर्वाण-दिवस साधना शिविर-2021

14 अप्रैल 2021 को पूज्य गुरुदेव को श्रद्धांजलि स्वरूप अखण्ड जाप होगा। 15 अप्रैल को प्रातः अखण्ड जाप की पूर्ति के समय गंगा के पावन तट पर पूज्य गुरुदेव को श्रद्धा सुमन अर्पित किये जायेंगे। तत्पश्चात् मन्दिर में आकर साधकगण अपनी श्रद्धांजलि के भाव गुरुदेव के चरणों में प्रस्तुत करेंगे। 15 अप्रैल को ही दोपहर को भण्डारा होगा। इसी दिन दोपहर बाद शिविर विधिवत् प्रारम्भ होगा और 21 अप्रैल को शिविर की पूर्ति होगी।

साधना परिवार की कार्यकारिणी की बैठक 18 अप्रैल 2021 को कार्यालय में होगी। **20 अप्रैल को जनरल बॉडी की सभा रात्रि के समय धाम के प्रांगण में होगी।**

साधना शिविर में भाग लेने वाले साधक अपने आने की सूचना मैनेजर साधना-धाम को 15 दिन पूर्व देने की कृपा करें।

पत्रिका में प्रकाशनार्थ भजन, लेख, संस्मरण आदि रचनायें पत्रिका के मुख्य सम्पादक अथवा उपसम्पादक के पते पर प्रोषित करें। लेख आदि पूज्य गुरुदेव की साधना पद्धति से मेल खाते हुए होने चाहिये। लेख E-mail अथवा WhatsApp के माध्यम से भी भेजे जा सकते हैं।

स्वामी जी के जन्मोत्सव पर साधकों द्वारा हवन का आयोजन

स्वामी जी के जन्मोत्सव पर
साधकों द्वारा पुष्पांजलि एवं आरती

स्वामी जी के जन्मोत्सव पर
साधकों द्वारा केक काटा गया

स्वामी जी के जन्मोत्सव पर
ब्रह्म-भोज का आयोजन